कुरुक्षेत्र

मई 1991

ग्रामीण गरीबी: कारण और निवारण

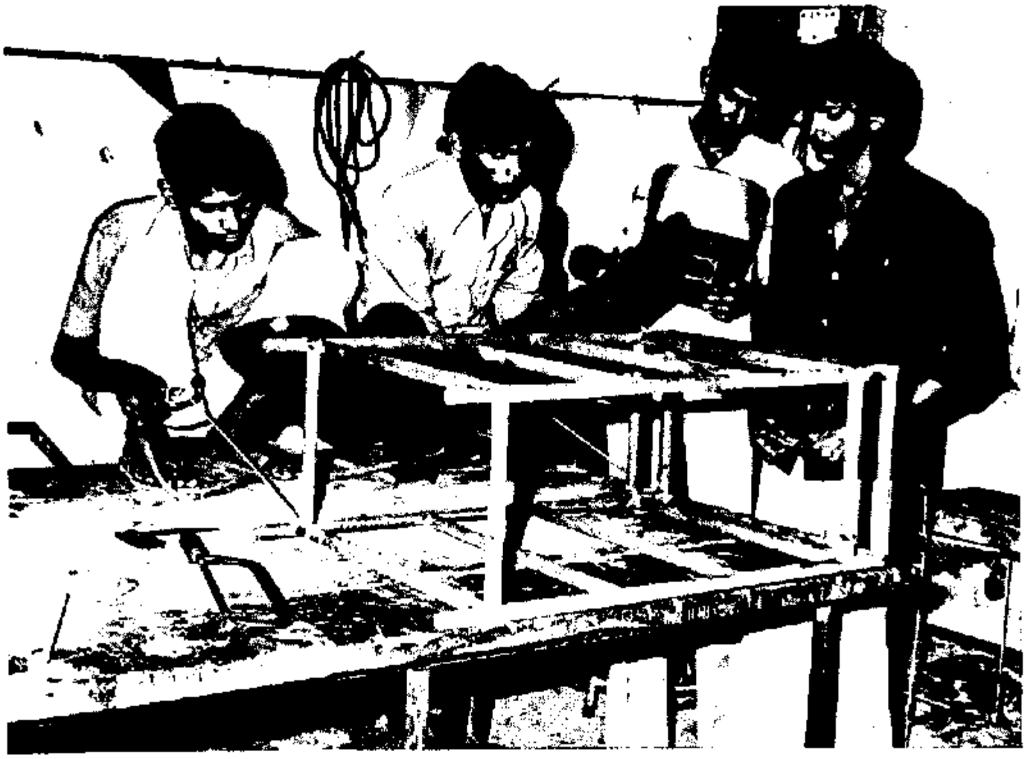

वर्ष–36, अंक 7, वैशाख-ज्येष्ठ-1913

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

सम्पादक	: राम बोध मिश्र
सहायक सम्पादक	: गुरचरण लाल सूबरा
उप सम्पादक	: राकेश शर्मा

विज्ञापन प्रबंधक	: बैजनाथ राजभर
व्यापार व्यवस्थापक	: जसवंत सिंह
सहायक व्यापार व्यवस्थापक	: शकुन्तला
सहायक उत्पादन अधिकारी	: के. आर. कृष्णन्

आवरण पृष्ठों की
साज सज्जा : अलका नय्यर
पारदर्शी : फोटो डिवीजन

एक प्रति : 3.00 रु.
वार्षिक चंदा : 30 रु.

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

विषय सूची

गरीबी के कारण एवं उसे दूर करने के उपाय — 2
गणेश कुमार पाठक एवं दिलीप कुमार श्रीवास्तव

निर्धनता निवारक दवा वयस्क शिक्षा — 9
हरे कृष्ण सिंह एवं कामेश्वर प्रसाद साह

ग्रामीण गरीबी उन्मूलन — 11
डा. राजेश्वरी माथुर

ग्रामीण ऋणग्रस्तता : जरूरत है शिक्षा, जागरुकता और आत्मनियंत्रण की...। — 13
डा. मुन्नीलाल विश्वकर्मा

भारत में गरीबी की समस्या — 15
विनय शंकर पाण्डेय

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार— — 18
रिपोर्ट

ग्रामीण निर्धनता तथा समाधान की नई व्यूह रचना — 19
धर्मपाल

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम : एक विश्लेषण — 21
डा. सी. एम. चौधरी

धरती-धन — 23
वासुदेव

ग्रामीण स्वास्थ्य रक्षा की समस्याएं एवं समाधान — 27
डा. रमेश चन्द्र तिवारी

कोटा जिले में पिछड़े वर्ग के कल्याण कार्यक्रम — 31
प्रभात कुमार सिंघल

स्वास्थ्य एवं पोषाहार का सपना : धाटोल की बाल विकास परियोजना — 33
हरीश व्यास

ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका — 34
आर्येन्द्र उपाध्याय

अदम्य साहस के प्रतीक लाला लाजपतराय — 36
मान सिंह 'मान'

असम की प्रगति में नियोजित विकास का योगदान — 39
सी. वी. रमन

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हो।

सम्पादकीय पत्र व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। **दूरभाष : 384888**

गरीबी के कारण एवं उसे दूर करने के उपाय

गणेश कुमार पाठक
दिलीप कुमार श्रीवास्तव

योजनाबद्ध विकास के पिछले 40 वर्षों के दौरान नि:संदेह सामान्य जीवन स्तर में सुधार हुआ है एवं प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है, किन्तु इसके बावजूद गरीबी का विकराल रूप लगभग वैसा ही बना हुआ है, जैसा कि आज से 40 वर्ष पूर्व था। गरीबी का अर्थ 'सामान्य जीवन की आवश्यकताएं जुटाने के लिए साधनों का अभाव' से है। गरीबी की रेखा को पारिभाषित करने के लिए निम्नलिखित मापदंडों का प्रयोग किया जा सकता है।

- निर्वाह के लिए न्यूनतम पौष्टिकता का स्तर,
- पौष्टिकता के इस स्तर को बनाए रखने के लिए न्यूनतम खुराक की लागत,
- इस खुराक को प्राप्त करने के लिए न्यूनतम प्रति व्यक्ति आय।

उपर्युक्त मापदण्डों के आधार पर अनेक विद्वानों जैसे डांडेकर व रथ, बी. एस. मिन्हास, प्रणव वर्धन, सुखात्मे, आई. जेड. भट्टा, बैद्यनाथ ओझा आदि एवं योजना आयोग ने भारत में गरीबी के संबंध में अनुमान प्रस्तुत किए हैं। सन् 1977 में योजना आयोग द्वारा स्थापित 'न्यूनतम आवश्यकताओं तथा प्रभावपूर्ण उपभोग की मांग पर भावी अनुमानों के लिए कार्यकारी दल' ने गरीबी की रेखा की परिभाषा में प्रति व्यक्ति उपभोग समूह का यह मध्य बिन्दु माना है जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति, प्रतिदिन 2400 कैलोरी का उपभोग हो एवं नगरीय क्षेत्रों में 2100 कैलोरी का हो। 1984-85 में यह मध्य बिन्दु ग्रामीण क्षेत्रों एवं नगरीय क्षेत्रों में क्रमशः प्रति व्यक्ति प्रति माह 107 रुपये एवं 122 रुपये थे। इसके नीचे प्रति व्यक्ति प्रति माह का उपभोग करने वाले व्यक्ति निर्धन माने गए हैं। इसी तरह पांच सदस्यों वाले एक ऐसे ग्रामीण परिवार को गरीबी रेखा के अंतर्गत माना गया जिसकी वार्षिक आय 6400 रुपये के कम थी। शहरी क्षेत्रों के लिए यह सीमा 7200 रुपये से कम निर्धारित की गई है।

भारत में गरीबी का स्वरूप

भारत में गरीबी का आंकलन राष्ट्रीय आय, प्रति व्यक्ति आय एवं वस्तुओं के उपभोग स्तर से लगाया जा सकता है। भारत में कुल राष्ट्रीय उत्पादन एवं राष्ट्रीय आय तथा प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय उत्पादन एवं आय का विवरण तालिका–1 से स्पष्ट है–

तालिका–1
राष्ट्रीय एवं प्रति व्यक्ति आय

वर्ष			प्रति व्यक्ति	
	कुल राष्ट्रीय उत्पादन (करोड़ रुपये में)	राष्ट्रीय आय (करोड़ रुपये)	कुल राष्ट्रीय उत्पादन (रुपये)	राष्ट्रीय आय (रुपये)
	चालू कीमतों पर			
1950-51	9136	8812	255	246
1970-71	36452	34235	674	632
1980-81	113846	105743	1677	1557
1984-85	189417	174018	2563	2355
1986-87	235440	215770	3060	2800
	1970-71 वर्ष कीमतों पर			
1950-51	13469	16731	487	466
1970-71	36452	34235	674	633
1980-81	50711	47414	747	698
1984-85	61427	57243	831	775
1986-87	67810	63150	880	820

तालिका 1 में प्रस्तुत प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय को वास्तव में सही नहीं माना जा सकता। कारण कि अपने देश में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली 80 प्रतिशत जनता की औसत आय एवं औद्योगिक केन्द्रों में रहने वाले लोगों की औसत आय में इतना ज्यादा अंतर है कि सारी राष्ट्रीय आय की कुल जनसंख्या से भाग देकर निकलने वाली प्रति व्यक्ति आय वास्तव में हर व्यक्ति की आमदनी नहीं होती है।

प्रति मास प्रति व्यक्ति उपभोक्ता व्यय का विवरण तालिका–2 से स्पष्ट है।

तालिका 2 से स्पष्ट है कि 1960-61 से लेकर 1980-81 के मध्य प्रतिमास प्रति व्यक्ति उपभोक्ता व्यय में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है। इसका तात्पर्य यह है कि गरीबी जिस गति से कम होनी चाहिए, उस गति से कम नहीं हुई है।

प्रति व्यक्ति मासिक उपभोक्ता खर्च के अनुसार व्यक्तियों का विवरण तालिका 3 से स्पष्ट है।

तालिका—2

प्रति मास प्रति व्यक्ति उपभोक्ता व्यय (1960-61)

(मूल्य रुपयों में)

वर्ष	ग्रामीण	नगरीय
1960-61	21.53	29.60
1964-65	23.56	32.11
1973-74	22.81	30.44
1977-78	22.22	32.02
1979-80	21.57	30.20
1980-81	23.22	31.81

स्रोत : योजना, अंक 15, पृ. 23

तालिका—3

प्रति व्यक्ति मासिक उपभोक्ता खर्च के अनुसार व्यक्तियों का वर्गीकरण (1983-84)

व्यय श्रेणी (प्रति व्यक्ति मासिक व्यय रुपये)	व्यक्तियों का प्रतिशत	
	ग्रामीण क्षेत्र	नगरीय क्षेत्र
00-30	0.92	0.21
30-40	2.47	0.51
40-50	5.11	1.40
50-60	7.90	2.93
60-70	9.69	4.92
70-85	15.24	9.52
85-100	13.64	10.64
100-125	16.99	17.17
125-150	10.00	13.13
150-200	9.78	16.31
200-250	3.96	8.75
250-300	1.81	5.19
300 से ऊपर	2.49	9.32

स्रोत : योजना अंक 23 व 24 पृ. 10

तालिका 3 से स्पष्ट है कि 150 रुपये प्रति मास से अधिक खर्च करने वाले व्यक्तियों की संख्या ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 19 प्रतिशत है एवं नगरीय क्षेत्रों में लगभग 39.5 प्रतिशत। सोचने की बात है कि 150 रुपये प्रति मास अर्थात 5 रुपये प्रतिदिन में एक व्यक्ति की आज कितनी जरूरतें पूरी हो सकती हैं। अगर हम किसी खुदरा दुकान में या उचित दर की दुकान में जाएं और अनाज, दालें, खाद्य तेल, आलू प्याज, ईंधन आदि खरीदना चाहें (कपड़ा, मकान आदि की अन्य जरूरतों को छोड़ भी दें) तो हम क्या खरीद सकेंगे? अतः ग्रामीण क्षेत्रों में 107 रुपये प्रति व्यक्ति प्रति मास एवं नगरीय क्षेत्रों में 122 रुपये प्रति मास पर गरीबी रेखा खींचना कहां तक उचित है।

गरीबी रेखा के निकट व्यक्तियों की उपभोग वस्तुओं का विवरण तालिका—4 से स्पष्ट है।

तालिका—4

गरीबी की रेखा के निकट व्यक्तियों की उपभोग वस्तुओं का विवरण (वस्तुओं में हिस्सा—1983-84 प्रतिशत में)

वस्तुएं	ग्रामीण क्षेत्र	नगरीय क्षेत्र
कुल अनाज	37.55	27.72
चना	0.24	0.19
अनाज की प्रति वस्तु	0.19	0.09
दालें	3.83	4.04
दूध और दूध के उत्पाद	7.02	8.66
खाद्य तेल	4.23	5.74
मांस, अंडा, मछली	3.08	3.71
सब्जियां	5.72	5.84
फल मेवे	1.19	1.52
चीनी	2.81	3.08
नमक	0.18	0.14
मसाले	2.53	2.62
पेय पदार्थ आदि	3.13	5.30
कुल खाद्य पदार्थ	71.21	68.66
पान, तंबाकू, नशीले पदार्थ	3.12	2.80
ईंधन, रोशनी	7.67	8.43
कपड़े	5.55	3.19
जूते	0.73	0.70
विविध सामान और सेवाएं	10.98	15.70
टिकाऊ सामान	0.72	0.53
कुल खाद्येतर पदार्थ	28.77	31.34
योग	100.00	100.00

स्रोत : योजना, अंक 23 व 24, पृ. 11

उपर्युक्त विश्लेषणों से स्पष्ट है कि ग्रामीण क्षेत्रों में 85 प्रतिशत से अधिक आबादी एवं नगरीय क्षेत्रों की 60 प्रतिशत से अधिक आबादी घोर गरीबी की स्थिति में जीती है, यदि हम गरीबी का मतलब एक स्वस्थ एवं सम्मानजनक जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के अभाव को मानें, किन्तु सरकारी मापदण्डों के अनुसार सातवीं योजना के आरम्भ में 272.7 मिलियन व्यक्ति गरीबी की रेखा के नीचे माने गए हैं जो कि कुल जनसंख्या का 36.9 प्रतिशत था। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी का अनुपात 39.9 प्रतिशत था जबकि नगरीय क्षेत्रों में 27.7 प्रतिशत। ग्रामीण क्षेत्रों में इस प्रकार गरीबों की संख्या 222.2 मिलियन थी, जिनमें प्रमुखतः भूमिहीन व छोटे किसान,

दस्तकार, बंधुआ मजदूर एवं कृषि श्रमिक जुड़े हुए थे। सन् 1977-78 में ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में गरीबी अनुपात प्रतिशत क्रमशः 51.2 एवं 38.2 था जो कि सन् 1984-85 एवं 1989-90 तक घटकर क्रमशः 39.9 प्रतिशत एवं 27.7 प्रतिशत तथा 28.2 प्रतिशत एवं 19.3 प्रतिशत हो गया। और अनुमान है कि सन् 2000 ई. तक यह कम होकर मात्र 5 प्रतिशत रह जाएगा। विभिन्न वर्षों में गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का विवरण तालिका—5 से स्पष्ट है।

तालिका—5

गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या (लाख में)

वर्ष	ग्रामीण	नगरीय
1960-61	2022.1	373.6
1965-66	1963.0	439.7
1970-71	2071.3	395.3
1979-80	2730.0	660.0
1981-82	2520.0	640.0
1984-85	2222.0	507.0
1989-90	1686.0	422.0

स्रोत : सातवीं पंचवर्षीय योजना 1985-90

विश्व बैंक ने देश के विभिन्न क्षेत्रों में भुखमरी आधारित गरीबी का निम्नलिखित स्वरूप प्रस्तुत किया है।

तालिका—6

भुखमरी आधारित गरीबी का क्षेत्रवार विवरण

क्षेत्र	जनसंख्या का प्रतिशत					
	निर्धन			अति निर्धन		
	1971	1983	1988	1971	1983	1988
दक्षिण—आंध्र प्रदेश, कर्नाटक, केरल एवं तमिलनाडु	61.0	46.2	43.2	29.3	25.8	26.1
पूर्व—बिहार, उड़ीसा, प. बंगाल एवं असम	61.8	57.3	51.3	26.7	29.4	36.7
केन्द्रीय—मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश	46.9	40.2	37.2	25.9	27.1	27.0
पश्चिम—महाराष्ट्र एवं गुजरात	46.1	38.2	34.9	1.2	1.1	1.0
उत्तर—पश्चिम—पंजाब हरियाणा एवं हिमाचल प्रदेश	12.6	9.8	8.3	एक से कम		

स्रोत : विश्व बैंक रिपोर्ट

तालिका—6 से स्पष्ट है कि समय के अन्तराल के साथ-साथ देश का समग्र गरीबी अनुपात कुल मिलाकर कम हो रहा है। देश के उत्तर-पश्चिमी भाग में इसकी अर्थव्यवस्था में से गरीबी को समाप्त कर दिया गया है और भारत के केन्द्रीय तथा पूर्वी दो क्षेत्रों में गरीबी और दरिद्रता की गम्भीर समस्या अभी भी बनी हुई है।

भारत में गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों को सरकारी रिपोर्टों में चार वर्गों में विभक्त किया गया है।

तालिका—7

गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का आय के अनुसार वर्गीकरण

वर्ग	वार्षिक आय (रुपयों में)	प्रतिशत अनुपात
अति दीन-हीन	2265 से कम	2.2
बहुत अधिक गरीब	2265—3500	13.8
बहुत गरीब	3501—5000	38.2
गरीब	5001—6400	45.8
कुल	6400 तक	100.0

अर्थव्यवस्था में गरीबी की मात्रा और उसके स्वरूप का काल के अधिकार के साथ गहरा संबंध है। हाल ही में ऐसी विचारधारा विकसित हुई है कि आय में वृद्धि और सुधार के परिणामस्वरूप एक व्यक्ति अथवा उसके परिवार के लिए पेट भर रोटी के रूप में निर्धनता काफी कम हुई है। इसलिए अब गरीबी के स्वरूप का मूल्यांकन भोजन के अतिरिक्त स्वास्थ्य, आवास, शिक्षा एवं स्वच्छता आदि तत्वों की कमी के रूप में किया जाता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो भारत में अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में 85 प्रतिशत से अधिक आबादी एवं नगरीय क्षेत्रों में 60 प्रतिशत से अधिक आबादी घोर गरीबी की स्थिति में जी रही है।

गरीबी के कारण

भारत में गरीबी उत्पन्न करने वाले कारकों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है :

आर्थिक कारक

बेरोजगारी का अर्थ है काम करने के इच्छुक लोगों के लिए काम का अभाव। अर्थात वह व्यक्ति बेरोजगार है जो शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से काम करने की क्षमता रखता है किन्तु उसे काम नहीं मिलता अथवा काम से अलग होने के लिए बाध्य किया जाता है। जिस व्यक्ति को किसी तरह का काम नहीं मिलता, वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता और बाध्य होकर उसे गरीबी रेखा के नीचे का जीवन यापन करना पड़ता है। सातवीं योजना के प्रारम्भ में भारत में बेरोजगारों की संख्या 44 मिलियन थी।

भारत में सामान्य कीमत स्तर में वृद्धि होती रहती है। कीमतों में वृद्धि के फलस्वरूप मुद्रा की क्रय शक्ति में कमी हो जाती है। फलत: वास्तविक आय में भी कमी हो जाती है। यदि कीमत वृद्धि के ही अनुपात में आय में भी वृद्धि हो तो वास्तविक आय में बदलाव नहीं आएगा। भारत में आय की वृद्धि की दर कीमत की वृद्धि की दर से कम रही है, परिणामस्वरूप लोगों के पास उपलब्ध क्रय शक्ति का ह्रास हुआ है जिससे गरीबी में वृद्धि हुई है।

भारत में जनसंख्या का भार अत्याधिक है। विगत 40 वर्षों में जनसंख्या वृद्धि की दर 2.5 प्रतिशत रही है। भारत में प्रति वर्ष औसतन 150 लाख व्यक्तियों की वृद्धि हो रही है। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण वस्तुओं की मांग में अपार वृद्धि हुई है। फलत: देश की सम्पत्ति का एक बड़ा अंश जनसंख्या की परवरिश में ही समाप्त हो जाता है जिससे विकास कार्यों के लिए पूंजी का अभाव हो जाता है और गरीबी को बढ़ावा मिलता है।

वैकल्पिक व्यवसायों के अभाव में बढ़ती हुई जनसंख्या का भार कृषि पर पड़ता है, खेतों का उप-खण्डन एवं उप-विभाजन प्रारम्भ हो जाता है। कृषि के लिए पुरानी एवं अप्रचलित पद्धतियों का प्रयोग किया जाता है। फलत: कृषि उत्पादकता घटती जाती है एवं आय का स्तर कम होने लगता है, जिससे गरीबी को बढ़ावा मिलता है।

भारत में गरीबी का एक मुख्य कारण उत्पादन के साधनों एवं आय का असमान वितरण है। देश की सम्पत्ति का चन्द हाथों में केन्द्रीयकरण हो गया। देश में 9 ऐसे बड़े औद्योगिक घराने हैं जिनकी पूंजी 5000 करोड़ रुपये से भी अधिक है। औद्योगिक घरानों के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास देश की अधिकांश सम्पत्ति संचित है। आर्थिक खोज परिषद् की एक रिपोर्ट के अनुसार देश के 20 प्रतिशत व्यक्ति 41 प्रतिशत राष्ट्रीय आय के स्वामी हैं। एकाधिकार जांच आयोग के अनुसार देश की कम्पनियां 75 परिवारों के हाथों में हैं। इस तरह आमदनी की असमानता गरीबी को लगातार बढ़ाते रहने में सहायक होती है।

अर्थव्यवस्था एवं कृषि के वाणीज्यिकरण की 'जजमानी' व्यवस्था की समाप्ति भी गरीबी का एक कारण है। इस व्यवस्था ने सैकड़ों वर्षों से विभिन्न पेशों के लोगों को गांवों में आर्थिक-सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से संरक्षक आश्रित संबंध में जोड़ रखा था। आम तौर पर सभी पेशेवर वर्ग एक-दूसरे के काम आते थे और जात-पात के भेदभाव के बिना अपनी सेवा के बदले सेवा अथवा मजदूरी प्राप्त करते थे। ब्रिटिश शासन काल और उसके बाद के इस व्यवस्था में ह्रास के कारण सम्पूर्ण ग्रामीण व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई।

सामाजिक कारक

विश्व के निरक्षरों में से 50 प्रतिशत हमारे देश में ही हैं और एक बहुत बड़ी संख्या में बच्चे प्राथमिक शिक्षा के स्वीकार्य स्तर से वंचित रह जाते हैं। सन् 1981 की जनगणनानुसार देश में 63.77 प्रतिशत जनसंख्या निरक्षर थी इस निरक्षरता का प्रभाव उत्पादकता पर पड़ता है जिससे देश में गरीबी बढ़ती है।

अंधविश्वास, भाग्यवाद एवं रूढ़िवादिता

भारत की अधिकांश जनता अंधविश्वासी भाग्यवादी एवं रूढ़िवादी है। उनका परिश्रम की बजाए भाग्य में अधिक विश्वास रहता है। लोग अनावश्यक रूप से सामाजिक रीति-रिवाजों, यथा विवाह-मृत्यु भोज, मुण्डन-संस्कार आदि उत्सवों पर अपनी क्षमता से अधिक खर्च करते हैं और गरीबी के जाल में फंस जाते हैं।

राजनैतिक कारक

20वीं सदी में गरीबी उत्पन्न करने वाले अन्य कारकों की अपेक्षा राजनैतिक कारकों का महत्व अधिक हो गया है। किसी भी व्यक्ति या देश की राजनैतिक सत्ता हथियाने की इच्छा, दूसरे व्यक्ति एवं देशों को नि:सहाय बना देती है। भारत को लम्बे समय तक ब्रिटिश शासन का उपनिवेश रहना पड़ा है। ब्रिटिश शासन ने स्वदेशी सामाजिक एवं आर्थिक संगठन को नष्ट कर दिया। शहरी दस्तकारी के तेजी से समाप्त होने के कारण शहरी और ग्रामीण हस्तशिल्पी नष्ट हो गए, जमींदारों, साहूकारों एवं ब्रिटिश शासकों की त्रिमूर्ति द्वारा किसानों के शोषण से लोग सर्वत्र गरीब हो गए।

स्वतंत्रता के बाद व्यापक रूप से गरीबी के बने रहने का कारण देश पर काबिज विशिष्ट वर्गों की प्रतिक्रियावादी भूमिका है। भारत को समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष और लोकतांत्रिक गणराज्य घोषित करने के बावजूद विशिष्ट वर्गों ने अपना घर भरने की नीति का अनुसरण किया। सम्पत्ति का अधिकार और उत्पादन साधनों पर स्वामित्व जो पूंजीवादी व्यवस्था का आधार है, संविधान में उन्हें मूल अधिकारों के अंतर्गत स्थान दिया गया है। लेकिन सभी समाजवादी आदर्श जैसे कि काम का अधिकार और शिक्षा का अधिकार उन्हें राज्य के नीति निदेशक तत्वों के अंतर्गत स्थान दिया गया है जिन्हें कानूनी रूप से लागू नहीं किया जा सकता। इन सब राजनीतिक कारणों के चलते कुछ चन्द लोगों के हाथों में ही सम्पत्ति केन्द्रीभूत हो गई है और सामान्य लोग इससे वंचित होकर और गरीब होते जा रहे हैं।

अन्त में, गरीबी की संस्कृति भी गरीबी को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। इनका संबंध गरीब लोगों की जीवन शैली से है। लोगों में सीमान्तिकता असहायता, निर्भरता, हीनता, आत्मसमर्पण और भाग्यवाद की भावना प्रबल है। ये लोग उच्च आकांक्षा भी नहीं रखते। ये प्रवृत्तियां पीढ़ी दर पीढ़ी जाती हैं, इनके प्रभाव के कारण बच्चे परिवर्तित परिस्थितियों और बढ़े हुए अवसरों का लाभ नहीं उठा पाते, क्योंकि वे मनोवैज्ञानिक रूप से इसके लिए तैयार नहीं हैं। इसलिए गरीबी की समस्या हमारे बीच बनी हुई है।

गरीबी की गत्यात्मकता

भारत में गरीबी के कारणों एवं गरीबी के स्वरूपों के आधार पर गरीबी की गत्यात्मकता का अध्ययन करना भी समीचीन प्रतीत होता है। हम जानते हैं कि हमारे संविधान में इस बात का उल्लेख है कि देश की सम्पत्ति एवं आय का केन्द्रीयकरण मात्र कुछ लोगों के हाथ में नहीं होना चाहिए। यही कारण है कि हमारी सरकार भी इस बात के लिए सदैव तत्पर रही है कि अधिकांश देशवासियों के जीवन स्तर में कोई खास विषमता न रहे। लोगों के जीवन स्तर में गुणात्मक एवं मात्रात्मक बदलाव के लिए प्रायः सभी पंचवर्षीय योजनाओं में अनेक तरह के कार्यक्रम को स्थान दिया गया, फिर भी वांछित वर्ग को उसका लाभ नहीं प्राप्त हो सका। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भी एक वर्ग सुविधा दर सुविधा प्राप्त करता रहा, जबकि दूसरा वर्ग उनकी दौड़ में पीछे छूटता रहा है। फलतः दोनों वर्गों (धनी एवं निर्धन) के मध्य की खाई और बढ़ती गई। सामान्यतया इन दो वर्गों के विकास के सन्दर्भ में तीन तरह की धारणाएं हैं, जो क्रमशः इस प्रकार हैं। प्रथम, गरीब और गरीब हुए हैं एवं सम्पन्न अपेक्षाकृत अधिक सम्पन्न होते जा रहे हैं, परिणामतः दोनों के बीच की खाई चौड़ी होती जा रही है। द्वितीय, निर्धनों का आर्थिक विकास सामान्य गति से हुआ है एवं अमीरों का विकास द्रुत गति से, परिणामतः दोनों के बीच खाई चौड़ी हुई। तृतीय, गरीबों एवं अमीरों के बीच विषमता की खाई सिमटी है।

उपर्युक्त तीनों तथ्यों में प्रथम तथ्य सही है। पिछले दशकों में गरीब और गरीब हुए हैं एवं अमीर और अमीर। परिणामतः दोनों वर्गों के बीच की विषमता की खाई चौड़ी हुई है। साथ ही उच्च जन्म दर आर्थिक विषमता का कारण नहीं, अपितु परिणाम है। इस प्रकार योजना के 40 वर्षों में गरीबी घटने के बजाय बढ़ी है। कारण कि उच्च वर्ग में सामाजिक-आर्थिक विकास तीव्र गति से हुआ है, जबकि निम्न वर्ग में निम्न गति से। क्योंकि भू-सम्पन्नता के कारण कृषि उत्पादन का लाभ उच्च वर्ग को ही प्राप्त हुआ है। उच्च वर्ग के उत्पादन में पांच गुनी वृद्धि हुई है जबकि निम्न वर्ग में दो गुनी। साथ ही जोताकार उच्च वर्ग में बढ़ा है, जबकि निम्न वर्ग में स्थैतिक है। निम्न वर्ग को प्राप्त यह लाभ उनकी वर्तमान आवश्यकताओं के संदर्भ में शून्य है। गैर-सरकारी एवं सरकारी सेवाओं द्वारा प्राप्त लाभ उच्च वर्ग के लिए नया लाभ है एवं इस लाभ से निम्न वर्ग वंचित है। निर्धन वर्ग में प्रव्रजन से कुछ लाभ है, परन्तु वह कर्ज की अदायगी में चला जाता है। विकास केन्द्रों से प्रदत्त सुविधाओं का लाभ अधिकांशतः उच्च वर्ग को प्राप्त है एवं निम्न वर्ग को रंच मात्र। इस तरह निम्न वर्ग का जो भी आर्थिक विकास हुआ है, वह ऋणात्मक ही हुआ है। फलतः गरीब या तो और गरीब हुए हैं अथवा गरीबी की उस अवस्था में हैं, जिस अवस्था में आज से 40 वर्ष पूर्व थे।

गरीबी दूर करने के उपाय

भारत में विद्यमान गरीबी, प्रच्छन्न बेरोजगारी, अल्प रोजगार एवं अलाभकर रोजगार की समस्या के समाधान के लिए सभी अर्थशास्त्रियों का मत है कि ग्रामीण विकास तथा कृषि एवं गैर कृषि उत्पादन में विज्ञान एवं तकनीकी के अधिकाधिक प्रयोग के अलावा इस समस्या का कोई अन्य उपचार नहीं है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि प्रति एकड़ उत्पादन में वृद्धि तथा फसलों की गहनता में वृद्धि से न केवल कृषि आय में वृद्धि होगी, बल्कि रोजगार में भी वृद्धि होगी। इससे केवल कृषि क्षेत्र ही नहीं अपितु गैर-कृषि क्षेत्र में भी गुणक प्रभाव के कारण रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी। यह भी आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादन, उनके संस्करण तथा सामाजिक सेवाओं का विकास करके आर्थिक क्रियाओं में विविधता उत्पन्न करनी होगी। यह तभी सम्भव हो सकेगा जबकि शहरी क्षेत्रों में सार्वजनिक निवेश में कमी करके इस राशि को ग्रामीण क्षेत्रों के विकास के लिए प्रयुक्त किया जाए। इस प्रकार गरीबी दूर करने के लिए गरीबी के कारणों को दूर करना होगा। कारण कि गरीबी रेखा को कोई सांख्यिकी अथवा आंकड़े पकड़ नहीं सकते। भयावह गरीबी आज भी भारत में विद्यमान है। गरीबी रेखा का सूचकांक अस्पष्ट संकेत सूचक है और संघर्षरत लोगों को स्निग्ध संख्याओं में बदल देता है। लेकिन अनेक अध्ययनों ने यह स्पष्ट किया है कि यह समस्या पहले से अधिक अन्तरक्षेत्रीय समस्या के रूप में उभर रही है। अब यह समान क्षेत्रीय रूप में अन्त की जा सकने वाली वह गरीबी नहीं है लेकिन आर्थिक विकास स्थिरता में समृद्ध हो रहे क्षेत्रों के साथ आर्थिक रूप से स्थिर क्षेत्र भी जुड़े हुए हैं। अतएव गरीबी दूर करने के लिए स्थान केन्द्रित दृष्टिकोण जरूरी है। इस तरह गरीबी दूर करने के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित पहलू अपनाए जा सकते हैं :

- स्थानीय पूंजी विनिर्माण परियोजनाएं, विशेष रूप से ऐसी

परियोजनाएं जिनके द्वारा कृषि उत्पादिता में शीघ्र वृद्धि हो सके, जैसे लघु एवं मध्यम सिंचाई परियोजनाएं, नालियों का निर्माण, संग्रह की सुविधाओं का विकास, स्थानीय यातायात एवं सड़कों का विकास आदि।

- खेतों की श्रम-प्रधान विधियों का अधिक प्रयोग, पशु धन का विस्तार एवं कृषि उत्पादन का नाना रूपण।
- भूमि विकास एवं व्यवस्थापन।
- अन्य उत्पादक क्रियाओं जैसे—बागान, मत्स्य व्यवसाय, आदि का विकास।
- ग्रामीण सामाजिक सेवाओं, जैसे कि शिक्षा, आवास, स्वास्थ्य सेवाएं आदि का विकास।
- व्यवहार्य लघु स्तरीय उद्योगों, दस्तकारियों, कृषि-जन्य उद्योगों, विधायन उद्योगों का विकास।

उपर्युक्त पहलुओं के अतिरिक्त रोजगार दिलाना, गरीबी हटाओ कार्यक्रम का मुख्य आधार होना जरूरी है। यहां मुख्य विषय रोजगार कार्यक्रम का प्रबंधन तथा ऐसे समुचित श्रम संगठन की भी जरूरत है जो कि देश के अधिकांश सुस्त मानवीय शक्ति संसाधनों को ग्रामीण विकास हेतु दक्षतापूर्वक इस्तेमाल कर सके। इसके साथ ही साथ गरीबी हटाओ कार्यक्रमों का महत्वपूर्ण घटक निर्धन व्यक्ति को भोजन सुरक्षा प्रदान करने की रणनीति है।

गरीबी दूर करने के सरकारी प्रयास

सरकार का अब यह मानना है कि गरीबी का सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन के साथ सीधा संबंध है। अत: गरीबी हटाओ कार्यक्रमों की समीक्षा अब देश में सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन के व्यापक परिप्रेक्ष्य में करनी होगी। हालांकि गरीबी मिटाने के लिए समग्र आर्थिक विकास की अवधारणा को भी अनुचित नहीं कहा जा सकता है फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि गरीबी पर सीधा प्रहार करते हुए हमें वांछित लाभ तब तक नहीं प्राप्त हो सकेगा, जब तक कि समग्र आर्थिक विकास की गति धीमी है। गरीबी मिटाने के लिए आवश्यक कार्यक्रम चलाने के लिए पर्याप्त साधन तभी पैदा किए जा सकते हैं, जब अर्थव्यवस्था की गति में तेजी और उत्पादन में लगातार वृद्धि हो। इस दृष्टि से सातवीं योजना में ऐसी नीति सुनिश्चित की गई थी कि समग्र आर्थिक विकास का स्वरूप ऐसा हो कि रोजगार के अवसर में वृद्धि तथा कम विकसित क्षेत्र के विकास पर अधिक बल मिल सके। आठवीं योजना के दृष्टिकोण पत्र में भी यह बात स्वीकार की गई है कि इस बात की तात्कालिक आवश्यकता है कि बेरोजगारी, निरक्षरता, अस्वस्थता और कमजोर तथा गरीब वर्गों के लोगों के रहन-सहन की स्थितियों में गिरावट की ओर ध्यान देकर असंतोष और अशांति के स्रोतों को खत्म किया जाए। विकास पद्धतियों और प्रक्रियाओं को पूर्णतया इस प्रकार का होना चाहिए कि वे प्रत्येक को पर्याप्त रोजगार, कम से कम भोजन, कपड़ा और मकान की न्यूनतम वांछनीय आवश्यकता को पूरा करने और शैक्षिक, स्वास्थ्य, शिशु देखभाल और अन्य सम्बद्ध सेवाओं तक पहुंचने लायक बना सकें। आठवीं योजना का बुनियादी उद्देश्य इस बात को सुनिश्चित करना है कि आम लोगों की आवश्यकताएं तथा उनका जीवन-स्तर आयोजना का मुख्य फोकस बनें। आठवीं योजना में गरीबी को दूर करने के उद्देश्य से ही कुल परिव्यय का 50 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों पर खर्च करने का निर्णय लिया गया है।

सरकार द्वारा प्रथम योजना से लेकर आठवीं योजना तक की सभी योजनाओं में गरीबी को हटाने हेतु अनेक कार्यक्रम चलाए गए हैं किन्तु इन कार्यक्रमों का पूरा लाभ इन गरीबों को नहीं मिल पाता है और इसे बीच में ही बिचौलिए खा जाते हैं और गरीब ज्यों का त्यों गरीब रह जाता है। सरकार ने भी यह बात स्वीकार की है कि गरीबी हटाओ कार्यक्रमों के क्रियान्वयन में अब तक अनेक खामियां रही हैं। सातवीं योजना में इन कमियों को दूर करते हुए इस बात का प्रस्ताव किया गया है कि सन् 1994-95 तक गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की जनसंख्या का प्रतिशत 10 से भी कम तक ले जाया जाएगा। किन्तु यह बात बहुत महत्वाकांक्षी मालूम पड़ती है क्योंकि ग्रामीण अंचलों में कुछ गरीब और गरीब हो रहे हैं। एक ओर जब कि अर्थशास्त्रियों का यह मत गलत नहीं है कि आर्थिक परिस्थितियों के कारण 10 प्रतिशत परिवार तो किसी भी समाज में अत्यंत निर्धन और भोजन, कपड़ा जुटाने में असमर्थ होती ही है तो दूसरी ओर भारतीय परिस्थितियों में यह प्रतिशत 10 से भी नीचे हो जाएगा, या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वालों को राहत मिल सकेगी, यह विश्वास करना कठिन-सा लगता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सरकारी योजनाओं के माध्यम से गरीबी हटाने में उतनी सफलता नहीं मिली है, जितनी मिलनी चाहिए जिसका मुख्य कारण योजना में नीतिगत कमी एवं योजना कार्यान्वयन की खामियां हैं।

जैसा कि डा. कामेश्वर नाथ सिंह ने अपने एक अध्ययन में कहा है कि "वस्तुत: योजना क्रियान्वित करने वालों को निम्न वर्ग की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि की जानकारी नहीं है। साथ ही इस क्षेत्र में वे अकुशल एवं अनुभवहीन है। इस योजना को सफल बनाने के लिए विभिन्न विषयों के विशेषज्ञों (समाजशास्त्री) भूगोलवेत्ता, अर्थशास्त्री आदि की सहभागिता आवश्यक है। अत: जिला स्तर एवं विकास खण्ड स्तर पर विभिन्न विषय विशेषज्ञों की समिति का होना अनिवार्य है।

क्योंकि जिलाधिकारी के नेतृत्व में यह कार्यक्रम पूर्णतया असफल रहा है। गरीबी का कलंक मिटाने के लिए समाज के हर व्यक्ति एवं हर वर्ग के सहयोग एवं सहभागिता अपरिहार्य है क्योंकि गरीबी अब मिटाने से नहीं मिटेगी, बल्कि बांटने से मिटेगी पर इसके लिए समाज के हर व्यक्ति को जिम्मेदारी निभानी होगी।"

हितेन भाया के शब्दों में "गरीबी दूर करने के सम्बंध में नीति बनाने में अपने आस-पास फैली गरीबी के बारे में सामान्य लोगों के दृष्टिकोण का काफी महत्व है। इसमें कोई संदेह नहीं कि बोध के स्तर पर गरीबी के स्वरूप के बारे में चिंता है और समझ भी है, परन्तु व्यवहारिक क्षितिज पर यह अपराध बोध और परेशानी से अधिक कुछ नहीं है। गरीबों को हमेशा व्यवस्था के प्रति खतरा समझा जाता है।" सैकड़ों साल पूर्व अरस्तू ने कहा था, "जब मध्य वर्ग नहीं रहता है और गरीबों की संख्या काफी अधिक हो जाती है तो समस्याएं जन्म लेती हैं और शासन समाप्त हो जाता है।" आज बड़े पैमाने पर मध्य वर्ग मौजूद है और उनकी स्वभाविक इच्छा आमूल परिवर्तन की नहीं बल्कि विकासपरक संशोधन करने की है क्योंकि पुनर्वितरण से विशेषाधिकारों का वर्तमान ढांचा बिखर जाएगा और अधिकांश लोगों की गरीबी तथा अन्य कठिनाइयों का कुछ भाग उनके हिस्से भी आएगा। ऐसा इसलिए हो रहा है क्योंकि जो लोग गरीब हैं वे अल्पसंख्यक होते हुए भी इतनी संख्या में अवश्य हैं कि शहरी इलाकों में एक अलग आत्म संतुष्ट समुदाय के रूप में रह सकें। यहां संचार, स्वास्थ्य, शिक्षा, संस्कृति आदि की आधुनिक सुविधाएं तथा रोजगार के पर्याप्त अवसर मौजूद हैं। इसी को कुछ लोग 'दो भारत' की स्थिति कहते हैं। निःसंदेह इस दूसरे भारत में अनेक कल्याणकारी और मानवतावादी व्यक्ति तथा संगठन काम कर रहे हैं किन्तु अधिक से अधिक वे कुछ हजार लोगों के ही आंसू पोंछ सकते हैं, सैकड़ों लोगों के नहीं।

इस प्रकार डा. भवतोष दत्त के शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि "निर्धनता वास्तव में हमारे लिए एक अंधकारपूर्ण क्षेत्र है" और यदि इस अंधकारपूर्ण क्षेत्र को दूर करने का उपाय नहीं किया गया तो सन् 2001 ई. तक हमें भारत के दो रूप मिलेंगे—एक भारत ऐसा होगा जिसमें बहुत से समृद्ध लोग बाहरी समृद्ध विश्व के सभी लोगों की समृद्धि का उपभोग करेंगे और दूसरा भारत जो न केवल गरीब रहेगा, बल्कि पहले से समृद्ध लोगों की समृद्धि का सारा भार वहन करेगा।" इस तरह स्पष्ट है कि यदि भारत को विश्व के अन्य देशों के सम्मुख खड़ा होना है, समृद्ध लोगों के भार से आम लोगों को मुक्त कराना है, तो येन-केन प्रकारेण भारत से गरीबी को मिटाना ही होगा। इसी में भारत की एवं भारत के लोगों की भलाई है।

भूगोल विभाग,
महाविद्यालय दूबे छपरा, बलिया, उत्तर प्रदेश।

लेखकों के लिए

रचना और अन्य प्रकाशनार्थ सामग्री भेजने वालों से अनुरोध है कि रचना भेजते समय वे कृपया इन बातों का ध्यान रखें:—

रचना संक्षिप्त एवं उसकी प्रस्तुति रोचक होनी चाहिए। इसमें उपलब्ध करायी गयी जानकारी अप्रकाशित और प्रमाणित होनी चाहिए।

रचना दो प्रतियों में डबल स्पेस में टाइप की हुई हो जो सात-आठ पृष्ठों से अधिक की नहीं होनी चाहिए। विषय प्रतिपादन में उपशीर्षकों का प्रयोग किया जाना चाहिए।

रचना के साथ ब्लैक एंड व्हाइट फोटो भी आमंत्रित हैं।

"कुरुक्षेत्र" मंगाने का पता

व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाउस
नई दिल्ली-110001

निर्धनता निवारक दवाः वयस्क शिक्षा

हरे कृष्ण सिंह
क्रमेश्वर प्रसाद साह

भारत 6 लाख गांवों का देश है, जहां लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। एक समय था जब हमारे गांव आत्मनिर्भर थे, उस समय यहां बेरोजगारी नाम की कोई समस्या नहीं थी। यह निर्विवाद सत्य है कि भारत शुरू से ही ग्राम प्रधान एवं कृषि प्रधान देश है। आज भी भारतीय अर्थव्यवस्था का मेरूदण्ड कृषि है। खासकर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त गरीबी एवं बेरोजगारी को दूर करने के लिए अनेक योजनाओं का श्रीगणेश किया गया। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता है कि इसके पूर्व गांवों के लोगों की सुख-सुविधा का ख्याल नहीं रखा जाता था।

ग्रामीण लोगों की खुशहाली को महत्वपूर्ण स्थान दिए जाने की सम्यक जानकारी प्राचीन ग्रंथों के अनुशीलन से होती है। उन दिनों राजा स्वयं गांव में जाकर ग्रामीण लोगों के दुख-दर्द को सुनता था तथा जरूरतमंद लोगों को पर्याप्त सुविधाएं उपलब्ध करवाता था। तत्कालीन भारत की समृद्धि से प्रभावित होकर विदेशी यहां व्यापार करने आए और धीरे-धीरे शासक बन बैठे। अपने शासन काल में विदेशियों ने भारतीय ग्रामीणों का जीवनाधार कृषि तथा ग्रामोद्योग व्यवस्था को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। साथ ही शोषण करने के लिए अनेक सुनियोजित और महत्वाकांक्षी कार्यक्रम चलाया। गरीबी, अज्ञानता, अशिक्षा, बीमारी एवं संगठन के अभाव में भारतीय जनता अंग्रेजों के शोषण-दलदल में करीब दो सौ वर्षों तक फंसे रहे। परिणामस्वरूप देश की अधिकांश जनसंख्या दरिद्रता के लाक्षागृह में फंस गई और बुनियादी आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर पा रही थी। इसी शोषण के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम प्रारम्भ हुआ। इस संग्राम के सफल नायक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपने अहिंसा आंदोलन से भारत को अंग्रेजों के चंगुल से आजाद कराया तथा गांवों के विकास पर काफी बल दिया। इसी प्रकार तत्कालीन अनेक समाज सुधारकों ने भी गांवों की अज्ञानता, अशिक्षा, अंधविश्वास से प्रभावित ग्रामीण दरिद्रता को दूर करने हेतु आर्थिक उन्नयन के लिए अपने-अपने विचार प्रकट किए। इसीलिए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रथम योजना काल से ही ग्रामीण विकास पर काफी बल दिया जा रहा है।

ग्रामीण विकास का आशय

आज 'ग्रामीण विकास' का अर्थ ही 'आर्थिक विकास' बन गया है जिसके लिए गांवों में रोजगार के अवसरों की वृद्धि, उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक साधनों का कुशल उपयोग, लघु एवं कुटीर उद्योगों का विकास, ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण एवं साक्षरता की संख्या बढ़ाना आवश्यक माना जा रहा है। वास्तव में आर्थिक विकास उन गतिविधियों को कहते हैं जिनका उद्देश्य एक ऐसी नवीन अर्थव्यवस्था की स्थापना करना और क्रमिक प्रगति करना होता है, जो अपने आय में उत्पादन को बढ़ाने और समाज के सभी समूहों के आय-स्तरों को उठाने की क्षमता रखती है। आर्थिक विकास की अवधारणा एक भौतिकवादी विचारधारा मात्र नहीं है, अपितु नैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक भी है।

ग्रामीण विकास के प्रयास

कहना न होगा कि "भारत गांवों में बसता है और कृषि भारत की आत्मा है।" कृषि, कुटीर उद्योगों की जन्मदात्री भी है। लेकिन विदेशी हुकूमतों की लम्बी अवधि, जनसंख्या वृद्धि, सिंचाई व नवीन तकनीकों की अवहेलना तथा हस्तशिल्प व दस्तकारों के साथ बेरहमी ने एक तरफ भारत की अधिकतम जनसंख्या की आवश्यकता पूर्ति करने वाली कृषि की उत्पादकता को कम कर दिया तो दूसरी तरफ कुटीर एवं लघु ग्रामोद्योग को विकसित नहीं होने दिया। इस स्थिति ने हमारे देश में गरीबी एवं बेरोजगारी नामक दम्पत्ति को पैदा किया और इस दम्पत्ति के गर्भ से दरिद्रता का जन्म हुआ।

दरिद्रता निवारण हेतु आजादी के बाद से आज तक भारत सरकार ने कई समयबद्ध योजनाओं का निर्माण एवं कार्यान्वयन किया, परन्तु इस दानव ने अपना डैना फैलाना बन्द नहीं किया। दूसरी ओर उद्योगों के विकास ने 'प्रदूषण' नामक नया संकट सामने लाकर रख दिया। हरित क्रांति से कृषि उत्पादकता में वृद्धि हुई परन्तु बढ़ते यंत्रीकरण तथा जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पन्न बेरोजगारी की समस्या का हल सीमित भूमि क्षेत्रफल नहीं निकाल सका। ऐसी स्थिति में बहुसंख्यक विकासशील देशों की तरह भारत ने भी अपना ध्यान ग्रामीण विकास पर केन्द्रित किया। अनेक ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को चलाया गया जिनमें प्रमुख हैं—सामुदायिक विकास परियोजना, समन्वित ग्रामीण विकास योजना, बीस सूत्री कार्यक्रम, ग्रामीण युवा प्रशिक्षण एवम् स्वरोजगार कार्यक्रम तथा जवाहर रोजगार योजना। परन्तु कुछ क्षेत्रों में तत्कालीन राहत के अतिरिक्त कोई संतोषप्रद सुधार नहीं हुआ है। निर्धनता

संक्रामक रोग की तरह फैल रही थी, जिसके लिए बेरोजगारी मिटाना आवश्यक होने लगा। अधिक संख्या में रोजगार सृजित करने हेतु उद्योगों का विकास ही एक मात्र रास्ता था। वृहत उद्योगों के लिए पूंजी निवेश एवं प्रदूषण वृद्धि नामक समस्याएं खड़ी हो गई। अतः अधिक रोजगार साम्भाव्यता, आर्थिक विकेन्द्रीकरण, संतुलित क्षेत्रीय विकास, राष्ट्रीय आय के समान वितरण, आयात से अधिक निर्यात के दृष्टिकोण से गांधी एवं नेहरू की अनुशंसाओं के आधार पर संतुलित आर्थिक विकास हेतु ग्रामोद्योग के विकास पर पूर्ण बल भी दिया गया। फलतः ग्रामोद्योग के पालनहार खादी और ग्रामोद्योग आयोग ने वित्तीय वर्ष 1990-91 के दौरान कुल 96 ग्रामोद्योग को क्रियान्वयन के लिए अपने कार्य क्षेत्र में शामिल कर लिया है।

ग्रामीण साक्षरता की स्थिति

31 मार्च 1981 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में सिर्फ 29.55 प्रतिशत व्यक्ति शिक्षित हैं जबकि देश की लगभग 75 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में रहती है। यह स्थिति तब है जब भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 में उल्लेख है कि "संविधान लागू होने के 10 वर्ष के भीतर सरकार 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करेगी।" शिक्षा विकास की दशा में किए गए प्रयासों के परिणाम से 28 मार्च 1989 तक देश में 5,29,392 प्राइमरी, 1,38,687 अपर प्राइमरी, 32,208 माध्यमिक और 15,498 उच्चतर माध्यमिक स्कूल हैं; इनमें से दो-तिहाई से अधिक गांवों में हैं। फिर भी निरक्षरों की संख्या अधिक है क्योंकि गांव के लोगों की समस्या शिक्षा नहीं अपितु रोटी है।

इस समस्या के निदान के लिए 2 अक्तूबर 1978 को महात्मा गांधी के जन्म दिन पर 15 से 35 वर्ष के आयु वर्ग के लोगों को साक्षर बनाने के लिए सम्पूर्ण देश में एक कार्यक्रम की शुरुआत की गई थी। आज वह कार्यक्रम 'वयस्क शिक्षा' के नाम से जाना जाता है। 5 मई 1986 को राष्ट्रीय साक्षरता अभियान समयबद्ध कार्यक्रम के अंतर्गत निरक्षरता उन्मूलन हेतु ने एक व्यापक राष्ट्रीय अभियान की शुरुआत की गई। इस अभियान में 1995 तक कुल 8 करोड़ लोगों को औपचारिक शिक्षा दिलाने की व्यवस्था की गई है।

वयस्क शिक्षा का महत्व

इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता है कि देश में कृषि उत्पादकता की अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। दूसरी तरफ खादी और ग्रमोद्योग आयोग के प्रयास से ग्रामोद्योग में भी वृद्धि हुई है। खासकर समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत भी कुटीर उद्योगों का प्रचलन काफी तीव्र गति से हुआ, परन्तु इच्छित सफलता नहीं मिली है। ग्रामीण लोगों की अज्ञानता ही एक मात्र कारण है।

साक्षरता से शिक्षा एवम् शिक्षा से ज्ञान, जानकारी एवं समझदारी में वृद्धि होती है। फलतः हमारे गांवों में बिखरे निरक्षर श्रमिक संगठित होकर कम पूंजी वाले उद्योगों द्वारा अपनी आय बढ़ा सकते हैं। प्रारम्भ में वयस्क शिक्षा की अवधारणा साक्षरता तक सीमित रही, किन्तु अब इसे मानवीय जीवन के व्यापक आधार से जोड़ा जा रहा है। वयस्क शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों में साक्षरता, सामाजिक जागरुकता, राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता, पर्यावरण संरक्षण, परिवार नियोजन तथा व्यावसायिक कौशल का समावेश है। खासकर वयस्क शिक्षा के माध्यम से बड़े पैमाने पर गृह उद्योगों की जानकारी, तकनीकी प्रशिक्षण, सरकारी सुविधाओं की जानकारी, कच्चे माल की आपूर्ति, उत्पादित माल की बिक्री एवं सामूहिक व संगठित होकर जोखिम उठाने की भावना जागृत की जा सकती है। उल्लेखनीय है कि बिहार राज्य वयस्क शिक्षा निदेशालय के परामर्श पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के शिक्षा प्रौद्योगिकी केन्द्र ने इस दिशा में मधुमक्खी पालन, साबुन उत्पादन, गाय की संकर नस्ल तथा पपीते से पपेन निकालना आदि उद्योगों से सम्बंधित साहित्य का निर्माण किया है। इसी प्रकार अन्य उद्योगों की जानकारी सरल एवं बोधगम्य बनानी होगी। कृषि से संबंधित साहित्य प्रकाशित हो रहे हैं, जिसमें कृषि के नए-नए तरीके, रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक दवाएं एवं संयंत्रों आदि के उपयोग बताए जाते हैं, परन्तु इसे ग्रामीण नहीं जान पाते हैं।

अतः आत्मनिर्भरता, ग्रामीण विकास के साथ अनेक क्षेत्रों में प्रगति का ढिंढोरा पीटने से पहले निरक्षरता उन्मूलन की दिशा में सफलता हासिल करनी होगी। निरक्षरता उन्मूलन हेतु वयस्क शिक्षा अभियान काफी उपयुक्त है, जिसके माध्यम से ग्रामीणों तक कृषि और ग्रामोद्योग संबंधित साहित्य, दैनिक समाचार की तरह पहुंचना होगा। तभी ग्रामीणों द्वारा सहकारी समितियों का निर्माण, संयुक्त रूप से अपने हितों का संरक्षण और निर्धनता रोग को भगाना संभव हो सकेगा। इस प्रकार यह साबित करना भी सहज जान पड़ता है कि भारतीय ग्रामीण परिवेश की निर्धनता का निवारण वयस्क शिक्षा के माध्यम से ही किया जा सकता है। इसके लिए किए गए प्रयास सराहनीय हैं अपितु और अधिक काम करने की आवश्यकता है जिसमें सरकार के साथ-साथ स्वयंसेवी संस्थाओं को भी आगे आना होगा।

सदस्य, वाणिज्य संकाय,
एम.एस.एम. कालेज, दरभंगा-846004

ग्रामीण गरीबी उन्मूलन

डा. राजेश्वरी माथुर

'गरीबी हटाओ' नारे से आज हरेक नागरिक परिचित है। गरीबी हटाओ का नारा लगता नया है, परन्तु वास्तव में यह कोई नया नहीं है। प्राचीन काल से ही विश्व का प्रत्येक राष्ट्र प्रत्यक्ष या परोक्ष, जाने-अनजाने इस नारे पर अमल करता आ रहा है या प्रयास करता रहा है। अब्राहम लिंकन के जमाने में अमेरिका में ठेली खींचने वाले लोग भी थे लेकिन आज के समुन्नत युग में ऐसे दृश्य संग्राहलय में भी शायद ही दिखें, जबकि अमेरिका से पुरानी संस्कृति और सभ्यता के धनी, हम भारतवासी गरीबी की रेखा के निर्धारण के विवाद में ही फंसे हुए हैं। और साथ ही हमारी सड़कों पर आज भी एक आदमी द्वारा दो-दो, तीन-तीन आदमियों को खींचने की मजबूरी का दृश्य एक आम बात है।

गरीबी चाहे ग्रामीण क्षेत्र की हो या फिर शहरी क्षेत्र की हमारी अर्थव्यवस्था को प्रभावित अवश्य ही करती है। लेकिन साथ ही हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि गरीबी पैदा भी अर्थव्यवस्था से होती है। अतः गरीबी उन्मूलन से पहले हमें यह देखना होगा कि यह गरीबी है क्या? जब तक हम गरीबी की परिभाषा व स्वरूप स्पष्टतः नहीं समझेंगे तब तक हमारा 'भिखारी कार में बैठकर भीख मांगने जाएगा' और भीख में मिली-सूखी रोटियों को फ्रिज में रख दिया करेगा।

आइए सबसे पहले गरीबी का उद्गम पता लगाएं। इसके लिए हमें कोई भारी या भागीरथ प्रयास नहीं करने होंगे। बस यह देखना होगा कि 'सोने की चिड़िया' भारत में किस दिन से आम आदमी की आमदनी उसके न्यूनतम खर्चों से भी कम हो गई थी। बस वही दिन था जब गरीबी ने जन्म लिया।

उस काल में साधन कम थे। अतः दूरियां ज्यादा थी। फिर भी हम एक-दूसरे की सुनते थे, समझते थे, समस्याओं को मिल बैठकर सुलझाते थे। वेतन बढ़े, साधन बढ़े, दूरियां कम हुईं लेकिन हम खड़े-खड़े ही बातचीत करने लगे और आज हमें भागते दौड़ते हुए भी हमारे अपने बच्चों, प्रियजनों व अपनी ओर देखने की फुर्सत नहीं है। यदि सुबह नहा-धोकर बाल बनाने से रह गए तो सारा दिन उसी हालत में भागते दिखें तो अचरज नहीं होगा। अब दुनिया की दूरियां रिमोट कन्ट्रोल के बटन पर आकर सिमट गई हैं। लेकिन इसके साथ ही हमारी संवेदनाएं, भावनाएं आदि सभी नैर्सिक अनुभूतियां प्रायः शून्य हो गई हैं।

आपको लग रहा होगा कि गरीबी उन्मूलन से इस बात का क्या नाता? यही हमारी वह भूल है जो हम वर्षों से करते चले आ रहे हैं।

आज हम योजनाएं तो लम्बी-चौड़ी बना लेते हैं लेकिन जिस आधार पर उनका निर्माण होता है उसी आधार पर हम उसके क्रियान्वयन में नहीं लगते हैं। जब हम काम करने लगते हैं तब हमारे निहित स्वार्थ सामने आ जाते हैं और हम उनकी पूर्ति के लिए इतने लालायित हो उठते हैं कि कई बार तो पूरी की पूरी योजना ही अनुत्पादक हो जाती है। और हमारा पूंजी निवेश लाभकारी के स्थान पर हानिकारक हो जाता है। ऐसी दशा में हमारे लक्ष्य हमसे और दूर, और पीछे खिसक जाते हैं तथा सामाजिक कुण्ठा व आर्थिक तंगी बढ़ती जाती है। उपर्युक्त के अलावा गरीबी बढ़ने के कुछ और कारण भी हैं। जैसे सामाजिक कुरीतियां, अनार्थिक जोतों का निर्माण अकाल व सूखा, बाढ़, बंधुआ मजदूर प्रथा, आपसी झगड़े, शहरों की ओर पलायन (बाद में), जनसंख्या वृद्धि, उर्वरता में कमी, संसाधनों के समुचित उपयोग का अभाव, आजादी पूर्व के शोषण का वातावरण आज तक, मालिकों को धोका देने की प्रवृत्ति, शिक्षा का अभाव, वंशानुगतता की परम्पराओं का ह्रास आदि।

हमारी विफलता का एक कारण हमारे ग्रामीण समाज में व्याप्त कुरीतियां भी हैं जैसे छोटे-मोटे कार्यक्रमों के बहाने अनापशनाप खर्च करना, जो कि अनुत्पादक व्यय है। इसके अतिरिक्त हमारे (ग्रामीण व शहरी) समाज में व्याप्त नशे व गप्पे मारने की आदत भी हमारी गरीबी को बढ़ाने का एक परोक्ष कारण है। हम घंटों इस बात पर बहस करते रहेंगे कि किसी कार्यालय विशेष में फाइलों को चलाने की प्रक्रिया क्या हो? लेकिन इस बीच किसी भी प्रकार से एक भी फाइल आगे नहीं बढ़ाएंगे या उत्पादन के तरीकों, प्रकारों, उपयोग आदि पर तर्क-वितर्क करते रहेंगे लेकिन उत्पादन करने में हाथ नहीं बढ़ाएंगे। इसके अतिरिक्त भांग, शराब, चरस, अफीम तथा नए रासायनिक नशों की आदत हमारे खर्चे तो बढ़ाती है लेकिन हमारी उत्पादकता को न्यून करती है। परिणामतः गरीबी

बढ़ती है। एक ओर शहरीकरण के कारण खेती की भूमि तेजी से कम होती जा रही है, दूसरी ओर परिवारों के बंटवारों के कारण वर्तमान में उपलब्ध खेतों का आकार भी घटता जा रहा है। जिससे वे धीरे-धीरे अनार्थिक जोतों के रूप में बदलते जा रहे हैं। इनका बढ़ना भी गरीबी को बढ़ाता है। इसके साथ ही खेतों को बेचने से प्राप्त धन भी उत्पादक कार्यों के स्थान पर अनुत्पादक कार्यों में लग जाता है जिससे कृषि क्षेत्र की पूंजी तो घट जाती है लेकिन अन्य किसी उत्पादक क्षेत्र में वृद्धि नहीं होती।

पिछले 4-5 सौ वर्षों के दौरान रही राजनैतिक अस्थिरता व विदेशी शासकों का प्रभाव भी हमारी अर्थव्यवस्था को तहस-नहस कर चुका है, जिसमें अंग्रेजी शासन में अन्तिम सौ वर्षों ने तो कहर ही ढा दिया था। आज अफसोस इस बात का है कि हम अभी तक (आजादी के 44 वर्ष बाद) भी उसी ढर्रे पर चल रहे हैं पहले हम गैरों के लिए काम करते थे, आज देश हमारा अपना है लेकिन हम अपने देश के लिए कार्य नहीं करते अपितु 'सरकारी नौकरी के मजे उड़ाते हैं।' ऐसे में दूरगामी और व्यापक परिणाम के रूप में गरीबी बढ़ती जा रही है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद केन्द्र तथा राज्य सरकारें अपने-अपने स्तर पर गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों में लगी हुई हैं लेकिन यह स्पष्ट है कि अरबों रुपये की धनराशि खर्च किए जाने के बावजूद स्थिति वैसे की वैसे ही है। राजनीतिक व संसदीय बहस के दौरान इस विषय को लेकर आरोप प्रत्यारोप भी लगाए जाते रहे हैं लेकिन अभी तक कोई ठोस परिणाम सामने नहीं आ पाए हैं। बल्कि गरीबों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि ही हुई है। यदि यहां प्रस्तुत पृष्ठ भूमि के संदर्भ में देखें तो हम अपनी असफलताओं के कारणों को सहज ही जान सकते हैं।

हमारे देश में गरीबी से बेरोजगारी बढ़ रही है और बेरोजगारी से गरीबी। इस दुष्चक्र को हम आज तक नहीं तोड़ पाए हैं। इस दुष्चक्र को तोड़ने व विपन्नता की दशा से उभरने के लिए यहां पर कुछ सुझाव प्रस्तावित हैं :

- कृषि को बढ़ावा देने के लिए अनार्थिक जोतों को लाभकारी जोतों के सहकारी कार्यों में परिवर्तित किया जाना चाहिए। इससे गांवों में रोजगार भी उपलब्ध होंगे तथा गांव की आजादी का शहरों पर पड़ने वाला दबाव कम होगा। इसके फलस्वरूप शहरों को भी अपनी साधन क्षमता का सदुपयोग करने का अवसर मिलेगा तथा गांव भी आगे बढ़ेंगे।
- हमें व्यर्थ के दिखावे तथा अनुत्पादक खर्च करने की प्रवृत्ति को निरुत्साहित करना होगा ताकि पूंजी निवेश संतुलित हो सके।
- बड़े-बड़े उद्योगों के विकास और विस्तार के साथ-साथ हमें लघु व कुटीर उद्योगों को भी पुनर्जीवित करना होगा ताकि प्राचीन काल व संस्कृति को संरक्षण मिलने के साथ-साथ रोजगार के अधिकाधिक अवसर उपलब्ध हो सके।
- वैदिक व्यवस्था के मर्म और अभिप्राय के वास्तविक संदर्भों में समन्वय और क्रियान्वयन किया जाना चाहिए ताकि समाज में व्याप्त मानसिक कुण्ठाएं नियंत्रित हो सकें तथा जनमानस का चिन्तन सुधरे। हमारी विचारधारा सृजनात्मक तथा धनात्मक बने।
- जन सहयोग से वनों तथा सिंचाई साधनों का विकास भी करना होगा तथा वर्तमान वनों को संरक्षण तो तुरन्त देना होगा ताकि प्रकृति भी प्रचुर वर्षा आदि के रूप में हमारी सही दिशा में मदद करें।
- हमें कुटीर व लघु उद्योगों की वैज्ञानिक प्रगति तथा आर्थिक परिस्थितियों के संदर्भ में समीक्षा कर उन्हें पुनर्जीवित कर उनका विस्तार करना चाहिए ताकि देश में उत्पन्न बेरोजगारी की विभीषिका शनैः-शनैः समाप्त हो जाए साथ ही 'खाली दिमाग शैतान का घर' वाली हमारी 'युवा शक्ति' का रचनात्मक उपयोग हो सके।
- कम निवेश भी काफी लाभ दे सकेगा तथा युवा वर्ग को रोजगार की परोक्ष गारंटी भी मिल जाएगी। यहां पर यह ध्यान रखना होगा कि कहीं प्रतिभावान खाती का बेटा खाती ही न रह जाए। यदि उसकी प्रतिभा परमाणु वैज्ञानिक जैसी है तो उसे तदनुरूप मार्ग और अवसर मिलने चाहिए, लेकिन ऐसा भी न हो कि किसी भी प्रकार के आरक्षण की आड़ में वास्तविक प्रतिभा को दबा दिया जाए। साथ ही कुटीर उद्योगों का विकास शहरी आबादी पर पड़ने वाले दबावों को भी कम करेगा।
- गांवों के विकास के लिए काफी काम हुआ है लेकिन फिर भी हमें मूलभूत आवश्यकताएं जैसे पेयजल, विद्युत शक्ति, चिकित्सा सुविधाएं तथा आवश्यक जिन्सों की पर्याप्त उपलब्धि व वितरण पर समुचित ध्यान देना होगा।

उपर्युक्त सुझावों पर धीर-गम्भीर मनन कर उनका वास्तविक क्रियान्वयन करने पर हमारे ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी अवश्य ही समाप्त होगी। ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

हसनपुरा 'ए', मेडिकेयर-2,
जयपुर-302006 (राजस्थान)

ग्रामीण ऋणग्रस्तता : जरूरत है शिक्षा, जागरूकता और आत्मनियंत्रण की...!

डा. मुन्नीलाल विश्वकर्मा

ग्रामीण ऋणग्रस्तता भारत की एक बहुत बड़ी कठिन समस्या है, विशेषकर कृषकों की ऋणग्रस्तता भारतीय कृषि हेतु एक अभिशाप है। कृषि शाही आयोग (1928) ने ठीक ही कहा था कि, "भारतीय कृषक ऋण का बोझ कंधे पर लेकर जन्म लेता है, ऋणग्रस्तता में ही पूरी जिन्दगी बिताता है, ऋण में ही उसका अंत हो जाता है, इतना ही नहीं अपितु वह अगली पीढ़ी हेतु भी ऋण का बोझ पीछे छोड़ जाता है।" इस तरह निर्धनता व ऋणग्रस्तता भारतीय कृषक जीवन के अविभाज्य अंग बने हैं।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता के अनुमान

ग्रामीण ऋणग्रस्तता के आंकड़े चौंकाने वाले हैं। देश की कुल आबादी का लगभग 75 प्रतिशत गांवों में रहता है और उसमें से लगभग 85 प्रतिशत लोगों पर ऋण चढ़ा रहता है। ग्रामीण ऋण की कुल राशि के अनुमान समय-समय पर विभिन्न समितियों एवं संस्थाओं द्वारा लगाए गए हैं, जिसमें से स्वतंत्रता के पूर्व अनुमान–

- अकाल आयोग (1901) के अनुसार 80 प्रतिशत कृषक ऋणग्रस्त थे।
- सर एडवर्ड मैकलेगन (1911) के अनुसार, ग्रामीण ऋण की राशि 300 करोड़ रुपये।
- सर एम. एल. डार्लिंग (1925) के अनुसार 600 करोड़।
- केन्द्रीय बैंकिंग जांच समिति (1929) के अनुसार 900 करोड़।
- डा. पी. जे. थामस (1933) के अनुसार 200 करोड़।
- डा. राधाकमल मुकर्जी के अनुसार 1200 करोड़।
- रिजर्व बैंक के कृषि साख विभाग (1937) के अनुसार 1800 करोड़।
- डा. नायडू के अनुसार 100 करोड़ रुपये थे।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लगाए गए अनुमानों के अनुसार–

- ग्रामीण साख सर्वेक्षण समिति (1951) द्वारा 750 करोड़।
- ग्रामीण ऋण व विनियोग सर्वेक्षण (1962) द्वारा 2789 करोड़।
- ग्रामीण ऋण व विनियोग सर्वेक्षण (1971) द्वारा 3921 करोड.।
- ग्रामीण साख समीक्षा समिति के अनुसार (1973-74) में अल्पकालिक ऋणों की मांग 2000 करोड़।
- भारतीय ऋण निवेश सर्वेक्षण (1971-72) के अनुसार अनुत्पादक कार्यों हेतु उधार की वार्षिक आवश्यकता सर्वाधिक निर्धन वर्ग हेतु 340 करोड़ रुपये और आधी से 5 एकड़ भूमि वाले सीमान्त कृषकों हेतु 550 करोड़ रुपये हैं।
- सिवरमन समिति (अप्रैल 1976) के अनुसार ऋण की रकम भूमिहीनों हेतु 170 करोड़ रुपये तथा आधी से 5 एकड़ भूमि वर्ग हेतु 125 करोड़ रुपये।
- रिजर्व बैंक के आर्थिक विकास विभाग द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार वर्तमान समय में कृषक ऋणग्रस्तता 3848 करोड़ रुपये है जिसमें से 17 करोड़ रुपये वस्तुओं के रूप में और शेष नकदी के रूप में है।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता के कारण

ग्रामीण क्षेत्रों में कर्जदारी की समस्या अंग्रेजों के शोषण-राज की ही देन है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् गांवों में कर्जदारी समाप्त करने हेतु राज्यों में कानून बनाए गए थे। तब कर्ज देने वाला साहूकार या जमींदार हुआ करता था। बैंक व्यवस्था के विस्तार से लाखों किसानों को तरह-तरह के कर्ज मिलने लगे हैं, लेकिन सूखा और बाढ़ तबाही के साथ कर्जदारी भी लाते हैं जिसका खामियाजा छोटे किसानों और श्रमिकों को ही भुगतना पड़ता है।

अपने पूर्वजों द्वारा लिए गए ऋण को चुकाने की समस्या कृषकों की समस्या होती है। कानून के चलते कोई भी व्यक्ति पैतृक ऋण का उतना ही जिम्मेदार होता है जितना कि उसे अपनी पैतृक सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। एक बार ऋणग्रस्त हो जाने के उपरान्त किसान की कई पीढ़ियां दासता जैसी जिन्दगी जीती रहती हैं।

गरीबी ग्रामीण ऋणग्रस्तता का कारण एवं परिणाम दोनों है। ग्रामीण ऋणग्रस्तता के चलते भारतीय कृषि आज भी प्रकृति पर निर्भर है। मौसमी, अदृश्य व अल्प बेरोजगारी,

निर्धनता तथा निम्न आय स्तर, किसानों का निम्न स्वास्थ्य स्तर, उपविभाजन व विखण्डन, कृषक निरक्षरता, पशु धन हानि, मुकदमेबाजी, पैतृक ऋण, ब्याज की ऊंचीदर, सामाजिक उत्सवों पर अपव्यय, साहूकारों की कुचालें एवं शोषण प्रवृत्ति, सरकार की राजस्व नीति, भूमि के मूल्यों में वृद्धि और कृषि विपणन की समस्याएं आदि ऋणग्रस्तता के कारण हैं।

यह विडम्बना ही है कि कृषकों के कंधों पर ऋण का बोझ उत्पादक कार्यों हेतु प्राप्त ऋण के कारण प्रायः नहीं होता। ऋणग्रस्तता का प्रधान कारण गांव की गरीबी है। जहां की 28 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे अपना गुजर-बसर कर रही है। अधिकांश ऋण भार दैनिक 'उपभोग वस्तुओं' की पूर्ति या विवाह, अदालती झगड़े, व्यसन, फिजूलखर्ची, सामाजिक तथा धार्मिक संस्कारों, शादी, जन्म, मुण्डन, भोज, मृत्यु पूजा-पाठ आदि अनुत्पादित कार्यों हेतु लिए गए ऋण के कारण होता है। अतः यह कहना अनुचित नहीं होगा कि ग्रामीण ऋणग्रस्तता का स्वरूप मुख्यतया अनुत्पादक है।

ऋणग्रस्तता के परिणाम

भारतीय गांवों की व्यवस्था और विशेषकर भूमि सम्बंध इस प्रकार के हैं कि एक बार ऋण लेकर किसान को सामान्यतः उससे मुक्ति सम्भव नहीं होती है। कृषक को ऋण पाने हेतु अपनी जमीन महाजन के पास गिरवी रखनी पड़ती है। महाजनों द्वारा दिए गए ऋण पर ब्याज की दर इतनी अधिक होती है कि कृषक ब्याज का भुगतान करते हुए ऋण की राशि वापस नहीं कर पाता है। इस तरह आखिरकार भूमि पर महाजन का अधिकार हो जाता है और गरीब कृषक भूमि से वंचित हो जाता है।

ऋणग्रस्तता के चलते किसान साधन विहीन हो जाता है, फलस्वरूप उसे उन्नत किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक, समय पर सिंचाई आदि कर पाना सम्भव नहीं होता, जिसके चलते उत्पादकता प्रभावित होती है। ऋण से दबा किसान उत्पादकता में सुधार नहीं कर सकता। वास्तविकता तो यह है कि कृषि में सुधार हेतु कृषकों को ऋणग्रस्तता से मुक्ति मिले।

महाजनों द्वारा शोषण

निःसंदेह विगत चार दशकों में ग्रामीण क्षेत्रों की ऋण प्रणाली में बहुत परिवर्तन हुआ है। संस्थागत एजेन्सियों का हिस्सा जहां 1951 में 7.3 प्रतिशत रहा, वहीं 1961 में बढ़कर 18.7 प्रतिशत, 1971 में 31.7 और 1981 में 63.7 प्रतिशत हो गया, फिर भी साहूकारों एवं सूदखोरों का दबदबा आज भी कायम है।

पिछड़े हुए ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले गरीबों के लिए सेठ, साहूकारों, महाजनों और सूदखोरों के शोषण का तरीका कमोबेश आज भी इतना बदतर है कि जो एक बार उनके गिरफ्त में आ गया, उसे आसानी से मुक्ति नहीं मिलती। यही कारण है कि ग्रामवासियों हेतु कर्जा बांटने का काम सरकारी समितियां, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा राष्ट्रीयकृत बैंकों के माध्यम से किया जा रहा है और सूदखोरों से ग्रामीणों की सुरक्षा हेतु कानून में पर्याप्त व्यवस्था की गई है।

यह विडम्बना ही है कि ग्रामीणों को ऋण की सुविधा मुहैया कराने हेतु सरकार द्वारा अनेक कदम उठाए गए हैं, जिसके तहत सरकारी समितियां, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक तथा राष्ट्रीयकृत बैंक ऋण मुहैया करा रहे हैं। ग्रामवासियों को आर्थिक स्वतंत्रता एवं आत्मनिर्भर बनाने में बैंकों की बड़ी अहम् भूमिका रही है। ट्रैक्टर, हल, बीज, कृषि यंत्रों आदि के लिए सरकारी बैंक विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत रियायती दर पर ऋण मुहैया करते हैं। फसली ऋण के अतिरिक्त सावधि ऋण, सिंचाई के साधनों तथा भूमि का विकास आदि कार्यों हेतु दिए जाते हैं। 4000 वार्षिक आय से कम वाले परिवारों को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत एवं 6400 रुपये से कम आय वाले परिवारों को विभेदक ब्याज दर पर उत्पादक कार्यों हेतु ऋण मुहैया कराया जाता है। लघु कृषकों, मजदूरों, कारीगरों, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के निर्धन छात्रों, विकलांगों, अनाथ आश्रम और नारी सदन आदि संस्थाओं हेतु बैंकों ने अपना हाथ बढ़ाया है। फिर भी ग्रामीणों को ऋण सरकारी एजेंन्सियों से उतना आसानी से उपलब्ध नहीं होता जितना कि साहूकारों, महाजनों एवं सूदखोरों से। यही कारण है कि भोले-भाले अशिक्षित, गरीब ग्रामीण सूदखोरों के चंगुल में आसानी से फंस जाते हैं और फिर एक बार उनके चंगुल में फंस जाने पर ऋण मुक्त होना सम्भव नहीं होता। आज भी एक-तिहाई कृषि ऋण महाजन तथा साहूकार देते हैं। इस वर्ग की अनुचित कार्यवाहियां भी किसानों की ऋणग्रस्तता के लिए उत्तरदायी हैं। महाजनों द्वारा ऊंची ब्याज की दर पर ऋण देना, हिसाब-किताब में गड़बड़ी करना, राशि को बढ़ाकर लिखना, भुगतान की रसीद न देना आम बात है।

पिछली सरकार ने कृषकों के 10 हजार तक के ऋण माफी की घोषणा की थी, लेकिन इससे लाभान्वित हुआ कौन? लघु एवं सीमान्त कृषक कितने ऋण लते हैं? अधिकाधिक ऋण तो गांव के बड़े कृषक ही लेते हैं और साथ ही मिलने वाली सर्वाधिक सरकारी सुविधाओं का लाभ भी वे उठाते हैं। कारण, नीचे वाली सर्वाधिक सरकारी सुविधाओं का लाभ भी वे उठाते हैं। कारण, नीचे से लेकर ऊपर तक के सरकारी कर्मचारियों-अधिकारियों तक उनकी पहुंच होती है। जबकि

(शेष पृष्ठ 17 पर)

भारत में गरीबी की समस्या

विनय शंकर पाण्डेय

गरीबी से अभिप्राय उस स्थिति से है जबकि समाज का एक भाग अपने जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की भी पूर्ति नहीं कर पाता। जब कोई व्यक्ति अथवा परिवार अपने न्यूनतम जीवन-स्तर से भी वंचित रहता है तथा केवल निर्वाह स्तर पर ही अपनी जिन्दगी बसर करता है, तो सामान्य अर्थों में उसे गरीब कहा जाता है।

न्यूनतम जीवन-स्तर तथा गरीबी की परिभाषाएं भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न हो सकती हैं। विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों का जीवन स्तर काफी ऊंचा होता है, तदनुरूप वहां की गरीबी का स्वरूप भी भिन्न होता है। हमारे देश में गरीबी की स्वीकृत परिभाषा समुन्नत जीवन-स्तर की अपेक्षा न्यूनतम जीवन-स्तर पर ही बल देती है। गरीबी रेखा का निर्धारण सामान्यतया जीवन चलाने के लिए पौष्टिक आहार के रूप में आवश्यक कैलोरी की मात्रा से किया जाता है। इसके बाद इसे एक विशेष आधार वर्ष पर आय में परिवर्तित कर उसे न्यूनतम जीवन-स्तर मानकर उस मापदण्ड से भी निकृष्ट दशा में रह रहे लोगों को गरीब की श्रेणी में रखा जाता है।

हमारे देश में गरीबी रेखा के निर्धारण का यह तरीका हमेशा विवादों की परिधि में रहा है। कहा जाता है कि जो न्यूनतम आवश्यकता की रेखा खींची गई है, वह गलत है। यह तो पशुवत जीवन की स्थिति से भी बदत्तर स्थिति का रेखांकन है। इसके अतिरिक्त विभिन्न परिस्थितियों में न्यूनतम जीवन-स्तर बनाए रखने के लिए खाद्य के रूप में आवश्यक कैलोरी की मात्रा में विभिन्नता हो सकती है। बावजूद इन तर्कों के किसी भी अर्थव्यवस्था को निरपेक्ष तथा सापेक्ष रूप से एक निश्चित रेखा की आवश्यकता पड़ती है, जो न्यूनतम अथवा अधिकतम सुविधा प्राप्त वर्गों में भेद कर सके।

भारत में अपार प्राकृतिक सम्पदा की उपलब्धता तथा प्रमुखतम उन्नत किस्म के खनिज पदार्थों जैसे—लोहा, अभ्रक, मैंगनीज इत्यादि की प्रचुरता के बावजूद गरीबी का साम्राज्य विस्तृत रूप से फैला हुआ है। कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक निकृष्टतम जीवन-स्थितियों में सांस लेते हुए लोगों को देखा जा सकता है। हालांकि निर्धनता भारत के हर क्षेत्र में है किन्तु कुछ प्रदेशों में इसका प्रकोप भीषणतम है। उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, तामिलनाडु, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश में कुल गरीब जनसंख्या का 83 प्रतिशत हिस्सा निवास करता है।

भारत में गरीबी का मुख्य कारण वही कारक हैं जो एक विकासमान अर्थव्यवस्था के चारित्रिक लक्षण के रूप में प्रकट होते हैं। यथा—अर्थव्यवस्था का अल्पविकास, आय तथा अन्य संसाधनों का असमान वितरण, जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि, प्रति व्यक्ति निम्न आय, बेरोजगारी, बाजार की अपूर्णता तथा अर्थव्यवस्था पर अवांछनीय शक्तियों का वर्चस्व आदि।

गरीबी रेखा के निर्धारण तथा उसके नीचे जीवन यापन करने वाले लोगों की संख्या के संदर्भ में विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने अलग-अलग मंतव्य प्रस्तुत किए हैं। विश्व खाद्य संगठन के प्रथम निदेशक लार्ड बायड ने सन् 1945 में पहली बार गरीबी रेखा की अवधारणा प्रस्तुत की थी। उनका कथन था कि किसी भी व्यक्ति को जिन्दगी का न्यूनतम स्तर बनाए रखने के लिए 2300 कैलोरी ऊर्जा खाद्य के रूप में प्रतिदिन आवश्यक होती है। इससे कम कैलोरी ऊर्जा का उपयोग करने वालों को उन्होंने गरीब माना। इसी आधार पर योजना आयोग ने भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों के लिए खाद्य के रूप में आवश्यक ऊर्जा 2400 कैलोरी प्रतिदिन तथा शहरी क्षेत्रों में रहने वाले व्यक्तियों के लिए 2100 कैलोरी प्रतिदिन को न्यूनतम जीवन निर्वहन उपयोग पदार्थ के रूप में पारिभाषित किया तथा इससे भी कम कैलोरी ऊर्जा का प्रतिदिन उपयोग करने वालों को गरीब की श्रेणी में रखा। भारत में 1979-80 के मूल्यों के आधार पर 76 रुपये प्रति माह ग्रामीण क्षेत्रों के लिए तथा 88 रुपये प्रति माह शहरी क्षेत्रों के लिए प्रति व्यक्ति न्यूनतम जीवन निर्वाह उपयोग व्यय रखा गया और उससे कम उपयोग व्यय करने वाले व्यक्ति को गरीबी रेखा से नीचे का माना गया।

डा. आर. गाडगिल, पी. एस. लोकनाथन, बी. एन. गांगुली और अशोक मेहता ने 1960-61 की कीमतों के आधार पर जो गरीबी रेखा का निर्धारण किया था, उसमें 20 रुपये प्रति माह न्यूनतम जीवन निर्वहन व्यय रखा गया। चौथी पंचवर्षीय

योजना ने भी इस गरीबी रेखा को मान्यता दी। इसी को आधार मानते हुए डा. बी. एस. मिनहास ने अपने अध्ययन में बताया कि 1967-68 में देश में 21.8 करोड़ ग्रामीण गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रहे थे। डा. मिनहास की मान्यता थी कि ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धनता रेखा से नीचे की जिन्दगी बसर करने वाले लोगों के अनुपात में कमी आई है। इसके विपरीत कुछ अर्थशास्त्रियों ने अपने अध्ययन में बताया कि ग्रामीण तथा शहरी दोनों ही क्षेत्रों में निर्धनता रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या में वृद्धि हो रही है। इन अर्थशास्त्रियों में श्री पी. डी. ओझा तथा श्री प्रवण के. बर्द्धन प्रमुख हैं। डांडेकर और रथ के अनुसार 1960-61 से 1967-68 के दौरान ग्रामीण निर्धनों की संख्या 13.5 करोड़ से बढ़कर 16.6 करोड़ और नगरीय निर्धनों की संख्या 4.2 करोड़ से बढ़कर 4.9 करोड़ हो गई। सातवें वित्त आयोग के अनुसार 1970-71 में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन बसर कर रही आबादी देश में 27.7 करोड़ थी, जिनमें 22.5 करोड़ आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 5.2 करोड़ आबादी शहरी क्षेत्रों में अवस्थित थी।

इस प्रकार से छठी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक देश में 31.7 करोड़ व्यक्ति निर्धनता रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रहे थे। सातवीं योजना के प्रारंभ में देश में गरीबों की संख्या 27.3 करोड़ थी जो कि योजना आयोग के अनुसार 1989-90 में घटकर 21 करोड़ हो गई है। अर्थात् सातवीं योजना के प्रारंभ में 36.9 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रही थी, जो 1988-90 में घटकर 25 प्रतिशत रह गई है। किन्तु योजना आयोग का यह दावा भारी अतिश्योक्ति पूर्ण प्रतीत होता है।

भारत सरकार द्वारा समय-समय पर गरीबी उन्मूलन के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से कई प्रकार के कार्यक्रम चलाए जाते रहे हैं। गरीबी एक अत्यंत जटिल समस्या है तथा हाल के कुछ दशकों में भारतीय आयोजकों के लिए एक गूढ़ पहेली के रूप में सामने आई है। भारत सरकार द्वारा अग्रलिखित गरीबी उन्मूलक कार्यक्रम चलाए गए हैं :

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों के कमजोर वर्गों, सीमांत कृषकों, भूमिहीन मजदूरों तथा छोटे-छोटे धंधे करने वाले निम्नवर्गीय लोगों के बीच रोजगार के अवसरों में अभिवृद्धि करने तथा उनके आय के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए इस श्रेणी के लोगों को अनुदान देने की व्यवस्था की गई। इस कार्यक्रम को देश के कुल 5011 प्रखण्डों में लागू किया गया। इसके अंतर्गत 3500 रुपये से कम वार्षिक आय वाले परिवारों को कृषि, कुटीर उद्योग, पशु पालन अथवा किसी अन्य व्यवसाय के लिए प्रत्यक्ष सहायता देने की व्यवस्था है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में इस सीमा रेखा को बढ़ाकर 6400 रुपये वार्षिक प्रति परिवार कर दिया गया।

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम

समाज में व्याप्त उपयोग के स्तर की असमानता को दूर करने के लिए भारत सरकार द्वारा इस कार्यक्रम को अपनाया गया। इस योजना के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाएं, जलापूर्ति, सड़क निर्माण, विद्युतीकरण, आवास, पोषाहार तथा पर्यावरण सुधार के उपायों पर एक सम्यक कार्यक्रम की रूपरेखा तैयार की गई। छठी योजना में इस कार्यक्रम में बुनियादी शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा का कार्यक्रम भी जोड़ दिया गया। इस कार्यक्रम पर पांचवीं योजना में 2607 करोड़ रुपये, छठी योजना में 5807 करोड़ रुपये तथा सातवीं योजना में 10081 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई।

राष्ट्रीय ग्रामीण नियोजन कार्यक्रम

काम के बदले अनाज योजना को समाप्त कर अक्तूबर 1980 में एक नई योजना राष्ट्रीय ग्रामीण नियोजन कार्यक्रम को लागू किया गया। इस योजना का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में फैली बेकारी तथा अर्द्ध-बेकारीजनित निर्धनता को समाप्त करना है। इस योजना के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित परियोजनाएं तथा परिसम्पत्तियों जैसे—छोटी-छोटी सिंचाई परियोजनाएं, बाढ़ रक्षा के लिए तटबंध, सड़क, भूमि संरक्षण, वनीकरण, सरकारी इमारतों आदि का निर्माण कर रोजगार के अवसर पैदा किए जाते हैं। इस मद में पचास प्रतिशत खर्च केन्द्र सरकार वहन करती है तथा पचास प्रतिशत राशि राज्य सरकार को लगानी होती है। छठी पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय ग्रामीण नियोजन कार्यक्रम के अंतर्गत 1625 करोड़ रुपये तथा सातवीं योजना में 2487.47 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था।

ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम

ग्रामीण क्षेत्रों के लिए चलाया गया यह विशेष प्रकार का कार्यक्रम है, जिसके अंतर्गत भूमिहीन परिवारों की पहचान कर उनमें से एक सदस्य को कम-से-कम 100 कार्य दिवस का रोजगार दिलाने का प्रयास किया जाता है। इस योजना के तहत वर्ष 1984-85 में 25.76 करोड़ श्रम दिवस का रोजगार सृजित किया गया।

इन कार्यक्रमों के अतिरिक्त ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, इन्दिरा आवास योजना, मरुस्थल विकास कार्यक्रम, आदिवासी विकास कार्यक्रम, इत्यादि गरीबी उन्मूलक योजनाएं भारत सरकार द्वारा चलाई जा रही हैं। इन

कार्यक्रमों का एकमात्र उद्देश्य निर्धनता के दुष्चक्र में फंसी एक बहुत बड़ी आबादी को बाहर निकालना रहा है।

हालांकि गरीबी उन्मूलक उपरोक्त सभी कार्यक्रमों की उपादेयता असंदिग्ध रही है और निर्धनता के दैत्य से लड़ने में इनकी भूमिका पर कोई विवाद नहीं है, किन्तु इन कार्यक्रमों के क्रियान्वयन तथा प्रशासनिक ढांचे की विफलता को लेकर कुछ संदेह पैदा हुए हैं। स्वयं योजना आयोग ने भी स्वीकार किया है कि सरकार द्वारा चलाए जा रहे महत्वाकांक्षी गरीबी उन्मूलक कार्यक्रमों के लिए आवंटित राशि का भारी गोलमाल होता है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत आने वाले ग्रामीण परिवारों की पहचान में अनियमितता बरती जा रही है तथा जो वस्तुतः गरीब हैं उन्हें यह लाभ नहीं मिल पाता। इसके लिए आवश्यक है कि निर्धन परिवारों की जांच-पड़ताल का कार्य पूरी निष्पक्षता तथा ईमानदारी से हो। डी.आर.डी.ए. को इस सम्बंध में सख्त हिदायत दी जानी चाहिए। परिसंपत्तियों की खरीद में लाभार्थी की इच्छा को तरजीह दिया जाना आवश्यक है तथा उनकी उत्पादकता उत्कृष्टता व गुणवत्ता के सम्बंध में सुनिश्चितता भी जरूरी है। इस प्रकार से ग्रामीण नियोजन कार्यक्रम के अंतर्गत कार्य योजनाएं क्रियान्वित करने वाले ठेकेदारों-अफसरों के शोषण से मजदूरों के बचाव की व्यवस्था होनी चाहिए। कार्य की वास्तविकता का पर्यवेक्षण मजदूरों की न्यूनतम मजदूरी की सुनिश्चितता तथा क्रियान्वयन मशीनरी की गतिविधियों पर नजर रखने के लिए एक विशेष प्रकार के टास्क फोर्स की आवश्यकता है। सहायता प्राप्त परिवारों को भी इन राशियों अथवा परिसंपत्तियों का उपयोग उत्पादक कार्यों व लाभअर्जन वाले व्यवसायों में करने की दृढ़ इच्छा-शक्ति इस गंभीर सामाजिक-आर्थिक समस्या से लड़ने की एक जरूरी शर्त है।

शिव काली भवन, न्यू आरपुर रोड नं.-1
गर्दनी बाग, पटना, (बिहार)

(पृष्ठ 14 का शेष)

लघु एवं सीमान्त कृषकों की पहुंच गांव के साहूकारों, महाजनों एवं सूदखोरों तक होती है। ऐसी स्थिति में ये गरीब ऋण के चंगुल में उलझ जाते हैं।

हालांकि सरकार ने अपनी तरफ से हर सम्भव प्रयास किया है और व्यवस्था की है कि ग्रामीण सरकारी एजेन्सियों से ही ऋण लें। लेकिन सरकारी अधिकारी अपने कर्तव्यों का निर्वाह नहीं कर सके हैं। उन्हीं गरीब ग्रामीणों को ऋण मिलता है जिनकी पहुंच सरकारी अधिकारी/कर्मचारी अथवा ग्राम प्रधान तक रहती है, यदि उन्हें ऋण मिलता भी है तो कमीशन देने के बाद। हां यह बात जरूर है कि बिना पहुंच वाले गरीब ग्रामीणों को भी ऋण उनके नाम पर मिला है, लेकिन वास्तव में यह गरीबों के नाम पर ऋण गांव के सम्पन्न लोगों अथवा अधिकारियों तक पहुंच वाले लोगों ने उठाया है।

ग्रामीण ऋणग्रस्तता दूर करने हेतु निम्न सुझाव सहायक सिद्ध होंगे—

- भूमि सुधार कानून को तेजी से क्रियान्वित किया जाए।
- जनसंख्या नियंत्रण हेतु गांवों में प्रभावी कदम उठाया जाए।
- आर्थिक जोतों को एकत्रित करके सहकारी संयुक्त खेती को प्रोत्साहित किया जाए।
- सिंचाई, सघन कृषि एवं ग्रामीण उद्योगों के विकास द्वारा तथा कृषि उपज मूल्य स्थिरीकरण द्वारा कृषकों की आय उच्च स्तर पर स्थिर की जाए।
- सहकारी संस्थाओं का विकास करके कृषि हेतु आवश्यक साख, बीज, खाद, औजार, विपणन की प्रक्रिया आदि की सेवाओं का सहकारीकरण तेजी से ईमानदारीपूर्वक किया जाए।
- ग्रामीण पंचायतों का विशेषकर न्याय पंचायतों का विकास किया जाए ताकि ग्रामीण गरीब जनता को निःशुल्क न्याय मिले तथा मुकदमेबाजी निरुत्साहित हो।
- शिक्षा के प्रसार द्वारा तथा अन्य समाज कल्याण संस्थाओं द्वारा सामाजिक रूढ़ियों को समाप्त करके सामाजिक उत्सवों पर होने वाले अपव्यय को रोका जाए।
- ग्रामीण बचत को प्रोत्साहन दिया जाए।
- पूर्वजों के ऋणों को समाप्त करने हेतु, वैज्ञानिक ढंग से खेती, गरीब कृषकों की आय में वृद्धि की जाए।
- ग्रामीण ऋणग्रस्तता दूर करने हेतु खुद कृषकों को आपस में संगठित होना होगा।
- सरकार द्वारा महाजनों, साहूकारों एवं सूदखोरों पर कड़ा प्रतिबंध लगाया जाए ताकि वे ग्रामीण गरीबों को अनुत्पादक कार्यों हेतु ऋण न दें।

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि यदि वास्तव में सरकार ग्रामीणों को ऋणग्रस्तता से मुक्ति दिलाना चाहती है तो उपर्युक्त सुझाव कारगर सिद्ध होंगे, लेकिन इससे पहले ग्रामीणों को स्वयं शिक्षा, जागरुकता और आत्म-नियंत्रण पर बल देना होगा।

प्राध्यापक-अर्थशास्त्र
काशी विद्यापीठ विश्वविद्यालय
वाराणसी-2 (उत्तर प्रदेश)

कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर' को भारतेन्दु पुरस्कार

(बाएं से दाएं) डा. श्याम सिंह 'शशि', श्री अक्षय कुमार जैन,
प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर, श्री सुबोध कांत सहाय, श्री महेश प्रसाद

नई दिल्ली, प्रधानमंत्री श्री चन्द्रशेखर ने कहा है कि जो राष्ट्र अपनी सभ्यता का आदर नहीं करता वह कभी प्रगति नहीं कर सकता है। उन्होंने कहा कि लेखक और बुद्धिजीवी इतिहास के निर्माता होते हैं और वे जिस चीज की रचना करते हैं वह समय के साथ न तो बदलती है और न धुंधली पड़ती है। प्रधानमंत्री ने ये उद्‌गार गत 14 मार्च को नई दिल्ली में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार प्रदान करते हुए प्रकट किए।

श्री चन्द्रशेखर ने कहा कि उत्कृष्ट साहित्य महलों में नहीं लिखा गया बल्कि वनों में साधु-संतों और साधारण जन द्वारा लिखा गया है। इन महान आत्माओं ने जिन मूल्यों की स्थापना की उसे युवकों के समक्ष लाने की आवश्यकता पर प्रधानमंत्री ने बल दिया।

समारोह को सम्बोधित करते हुए सूचना और प्रसारण राज्य मंत्री श्री सुबोध कांत सहाय ने कहा कि पुरस्कार विजेता बधाई के पात्र हैं। उन्होंने लोगों में पढ़ने के शौक को प्रोत्साहन देने के लिए प्रकाशन विभाग द्वारा किए जा रहे कार्यों पर प्रसन्नता व्यक्त की।

वर्ष 1989 का पहला पुरस्कार प्रख्यात पत्रकार एवं स्वतंत्रता सेनानी श्री कन्हैया लाल मिश्र 'प्रभाकर' को उनकी पुस्तक 'तपती पगडंडियों पर पदयात्रा' के लिए प्रदान किया गया। उन्हें पुरस्कार स्वरूप 25,000 रुपये की नकद राशि प्रदान की गई। हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और अंग्रेजी के जाने-माने लेखक श्री देवेन्द्र इस्सर को 15,000 रुपये नकद का दूसरा पुरस्कार प्रदान किया गया। उन्हें यह पुरस्कार उनकी पुस्तक 'जन माध्यम सम्प्रेषण और विकास' के लिए दिया गया है। तीसरा 10,000 रुपये का नकद पुरस्कार श्रीमती रेखा रस्तोगी को उनकी पाण्डुलिपि 'प्राचीन भारत में प्रेक्षागृह' के लिए दिया गया।

इसके अलावा पांच अन्य लेखकों को पांच-पांच हजार रुपये नकद के मान पुरस्कार दिए गए। पत्रकार डॉ. राम मोहन पाठक को उनकी पुस्तक 'साहित्य पत्रकारिता' के लिए, श्री बच्चन सिंह को 'हिन्दी पत्रकारिता के नए प्रतिमान', श्री वीरेन्द्र गोहिल को 'ध्वनियों का इन्द्रधनुष' और डॉ. दुर्गा दास मुखोपाध्याय को 'जनसंचार के जन माध्यम' पुस्तक के लिए

(शेष पृष्ठ 20 पर)

ग्रामीण निर्धनता तथा समाधान की नई व्यूह रचना

धर्मपाल

40 साल की लम्बी योजनावधि के बाद आज भी भारत गरीब है। विश्व का सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश होते हुए भारत आज भी 'तृतीय विश्व' के देशों की श्रेणी में आता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही सभी योजनाओं का गरीबी उन्मूलन का उद्देश्य सर्वोपरि रहा है। गरीबी के विरुद्ध लड़ाई की व्यूहरचना 1950 की योजना से ही शुरू हो गई थी। बहुत बड़ी मात्रा में रकम गरीबी मिटाने के कार्यक्रमों में विनियोग की गई, लेकिन इन कार्यक्रमों के उद्देश्य केवल स्वप्न मात्र रह गए। आने वाले समय में देश को और ज्यादा भयंकर बेकारी का सामना तो नहीं करना पड़ेगा?

गरीबी की पहचान इसी आधार पर की जा सकती है कि कौन गरीब हैं तथा वे कहां रहते हैं। अनेक कारणों से गरीबी व्याप्त है। गरीबी केवल मौद्रिक तत्वों से ही नहीं बल्कि स्वास्थ्य, शिक्षा तथा आवासीय कारणों से भी व्याप्त है। हालांकि अर्थशास्त्रियों में गरीबी की संकल्पना के बारे में पर्याप्त मतभेद हैं, परन्तु योजना आयोग ने गरीबी के स्तर को उपभोग व्यय के रूप में (जो एक परिवार को पोषण के लिए अनिवार्य है) व्यक्त किया है। उपभोग व्यय का जो निम्नतम स्तर है उसे गरीबी रेखा माना है। गरीबी रेखा को मूल्य स्तर प्रभावित करता है। मूल्य और गरीबी रेखा में धनात्मक सहसम्बंध है। वस्तुओं के मूल्य ऊंचे होने से मुद्रा का मूल्य कम होगा जिससे मुद्रा की क्रयशक्ति कम होगी तथा गरीबों पर भार बढ़ेगा यानि गरीबी ज्यादा होगी।

वर्तमान में गरीबी रेखा प्रति परिवार प्रति वर्ष 6,400 रुपये उपभोग व्यय के रूप में निर्धारित की गई है। दूसरे शब्दों में यदि किसी परिवार की वार्षिक आय 6,400 रुपये से कम है तो वह गरीबी की रेखा से नीचे है। सातवीं पंचवर्षीय योजना में 4,800 रुपये प्रति वर्ष आय वाले परिवार को गरीबों में से गरीब माना गया तथा प्राथमिकता दी गई। 1977-78 में कुल जनसंख्या के 48 प्रतिशत जनसंख्या को गरीबी की रेखा से नीचे अनुमानित किया गया था। वही संख्या कम होकर 1984-85 में 37 प्रतिशत तथा 1994-95 में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन करने वालों की संख्या कुल जनसंख्या की 10 प्रतिशत व सन् 2000 तक पूर्णतया गरीबी का उन्मूलन हो जाने की संभावना व्यक्त की गई है, परन्तु आने वाले दस वर्षों में गरीबी उन्मूलन की संभावना अप्राप्य-सी लगती है क्योंकि अधिकतर ग्रामीण जनसंख्या कृषि पर निर्भर है तथा कृषि मानसून का जुआ बनी हुई है। शुद्ध रूप में 1989-90 में 221 लाख व्यक्ति गरीबी की रेखा से नीचे रह जाने का अनुमान है। अधिकारीगण सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक 62 लाख व्यक्तियों के गरीबी रेखा से नीचे होने का दावा करते हैं जो आलोच्य है। यह तर्क दिया जाता है कि जीवत-स्तर की कीमत दर में कोई सुधार नहीं हुआ है क्योंकि विकास वृद्धि दर जो कि 3.5 प्रतिशत वार्षिक है, जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर 2.5 प्रतिशत के संदर्भ में पर्याप्त नहीं है। भूमि पर जनसंख्या का दबाव, क्रियात्मक जोतों की औसत नाप का 2.8 हैक्टेयर से कम होकर 1.84 हैक्टेयर हो जाना, सीमान्त किसानों व भूमिहीन मजदूरों की संख्या में बढ़ोतरी, गरीबी-अमीरी का सामाजिक असंतोष, अन्तर-क्षेत्रीय असमानताएं आदि समस्याएं कृषि व उद्योगों का समन्वित विकास न हो पाने से हल नहीं हो पाई हैं जिसके कारण गरीबी बनी हुई है।

गरीबी का निवारण करने तथा उसका सही आंकलन करने के मार्ग में प्रमुख रूप से दो धारणाएं सदैव बाधक रही हैं। इनमें एक का सम्बंध राष्ट्रीय आय में कृषि के योगदान से है तथा दूसरी धारणा का सम्बंध रोजगार कार्यक्रमों के मूल दर्शन से है। वर्ष 1950-51 में राष्ट्रीय आय में कृषि का योगदान 62 प्रतिशत था जो 1988-89 में घटकर 35 प्रतिशत रह गया, दूसरी ओर इसी अवधि में औद्योगिक क्षेत्र का योगदान 17 प्रतिशत से 27 प्रतिशत तथा सेवा क्षेत्र का योगदान 21 प्रतिशत से बढ़कर 38 प्रतिशत हो गया है। भारत में कृषि का योगदान तो घटा है पर आजीविका के लिए कृषि पर आश्रित लोगों का प्रतिशत गत चार दशकों में 70 प्रतिशत के आस-पास ही बना हुआ है। कृषि पर निर्भर जनसंख्या के स्थिर रहने व कृषि के राष्ट्रीय आय में घटते योगदान का सीधा मतलब यही है कि विकास के नाम पर जो भी सम्पन्नता योजनावधि में देश में आई है इसका बड़ा भाग शहरी जनसंख्या द्वारा ही लिया गया है। जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण गरीबी बढ़ी है, घटी नहीं है। दूसरी धारणा का सम्बंध रोजगार दर्शन से है। नई आर्थिक नीति तथा उससे जुड़े रोजगार कार्यक्रमों ने सम्भावित असीमित कार्यक्षमता वाले 'मानव कोष' और असंगठित व अर्द्ध-बेरोजगार ग्रामीण वर्ग को केवल रोजगार समस्या ही समझा, न कि सम्भावित विकास का प्रभावशाली माध्यम।

परिणामस्वरूप रोजगार कार्यक्रम केवल रोजगार के लिए ही बने, न कि ग्रामीण पूंजी-निर्माण के लिए। नई कृषि व्यूह रचना व उन्नत खेती तथा यंत्रीकरण के प्रसार ने श्रम आवश्यकता को संकुचित कर दिया।

गरीबी उन्मूलन की पूर्व व्यूह रचनाएं

रूस की क्रान्ति के बाद भारतीय योजना के जनक जवाहरलाल नेहरू ने विकास के लिए मॉडल तैयार किए। आर्थिक विकास का उत्तरदायित्व योजना आयोग को दिया गया। योजनाओं को समष्टि स्तर पर लागू किया गया तथा राज्यों को राष्ट्रीय योजना के अंतर्गत अपनी योजनाएं क्रियान्वित करने की सुविधा दी गई।

सामाजिक न्याय के साथ विकास व सन्तुलित विकास सभी योजनाओं के केन्द्रीय उद्देश्य रखे गए। परिणाम, हालांकि भिन्न रहा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन में प्रभावात्मक वृद्धि हुई है। सकल घरेलू उत्पादन की वृद्धि दर (1980-81 की साधन लागत पर) 1988-89 में 10.4 प्रतिशत पाई गई। खाद्यान्न में वृद्धि संतोषजनक हुई परन्तु क्षेत्रीय विषमताएं ज्यों कि त्यों बनी हुई है। कुछ राज्य जैसे पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र तथा पं. बंगाल समृद्ध है तथा बाकी को अभी समृद्धि की दौड़ पूरी करनी है।

नई व्यूह रचना

ग्रामीण निर्धनता के उन्मूलन के लिए योजना प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण नई व्यूह रचना है। प्रधानमंत्री, जो कि योजना आयोग के अध्यक्ष भी हैं, ने योजना प्रक्रिया के विकेन्द्रीकरण पर राष्ट्रीय सहमति की वकालत की है। योजना का केन्द्रीयकरण से विकेन्द्रीकरण की बात पहली बार नहीं हुई है बल्कि पूर्व की योजनाओं में भी इस बात पर जोर दिया गया था। प्रथम पंचवर्षीय योजना में सामुदायिक विकास प्रोजेक्ट इस दिशा में किया गया ही प्रयास था।

योजना केवल विकेन्द्रीकरण की संस्कृति व स्वतंत्र प्रबल विचारधारा में हीं फल-फूल सकती है। सूक्ष्म योजनाएं, जो कि क्षेत्रीय विकास के लिए चयनात्मक रूप से बनाई जाएंगी, न केवल प्रोजेक्ट विशेषीकृत होंगी वरन् इनका उद्देश्य विस्तृत क्षेत्रीय विकास होगा। क्षेत्र-क्षेत्र की भिन्न-भिन्न विशेषताएं होती हैं, अतः क्षेत्रीय योजना के माध्यम से विकास का उद्देश्य क्षेत्र के संसाधनों द्वारा प्राप्त किया जा सकेगा।

ग्रामीण विकास में इस नई व्यूह रचना के अपनाने में दो स्कूलों के विचार महत्वपूर्ण हैं—(1) डी.आर. गाडगिल—एल. के. सेन स्कूल के विचार तथा (2) वी.के.आर.वी. स्कूल के विचार। प्रथम स्कूल विकास केन्द्रित दृष्टिकोण पर जोर देती है तो दूसरी ग्रामीण कलस्टर दृष्टिकोण पर। दोनों इकाइयों को एक करने की बात करती हैं, लेकिन एकीकरण के तरीकों में भिन्नता है। सीधा एकीकरण की सिफारिश गाडगिल सेन स्कूल की है, जिसका लक्ष्य शहरी-ग्रामीण खाई को पाटना जबकि समतल एकीकरण राव स्कूल द्वारा सुझाया गया, जिसको गांवों में स्वयं प्राप्त करेंगे। विकास की प्रेरणा बड़े बाजार से छोटे बाजार यानि गांवों में स्थानान्तरित होती जाएगी, इसी प्रकार ग्रामीण इकाई दूसरे पड़ोसी को प्रेरणाएं स्थानान्तरित करेंगी।

क्षेत्रीय योजना के लिए दृष्टिकोण चाहे कुछ भी हो पर मानव केन्द्रित अवश्य होना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब योजना सच्चे अर्थों में क्रियान्वित हो। विकेन्द्रीकरण की नई व्यूह रचना ग्रामीण निर्धनता के उन्मूलन में निश्चय ही वरदान सिद्ध होगी।

आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबंध विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर-4 (राजस्थान)

(पृष्ठ 18 का शेष)

सम्मानित किया गया। श्री लक्ष्मीकांत शर्मा और डॉ. जे.एस. मूर्ति को उनकी पुस्तक 'भारत में जनसंचार के आयाम' के लिए संयुक्त रूप से मान पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

इससे पूर्व सूचना और प्रसारण मंत्रालय के सचिव श्री महेश प्रसाद ने प्रधानमंत्री तथा समारोह में उपस्थित अन्य गणमान्य अतिथियों का स्वागत किया। पुरस्कार विजेताओं को बधाई देते हुए उन्होंने लेखकों से अपील की कि वे जनसंचार विषयों पर हिन्दी में मौलिक पुस्तकें लिखने में अपना योगदान करें।

प्रकाशन विभाग के निदेशक डॉ. श्याम सिंह 'शशि' ने प्रधानमंत्री तथा अन्य विशिष्ट अतिथियों का स्वागत करते हुए अपने भाषण में प्रकाशन विभाग की हाल की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि प्रकाशन विभाग ने एक नई श्रृंखला शुरू की है। इसमें महान व्यक्तियों द्वारा समय-समय पर प्रकट किए गए उद्‌गारों को छोटी-छोटी पुस्तिकाओं के रूप में सिर्फ एक रुपये मूल्य पर जनसाधारण को उपलब्ध कराया जा रहा है। विभाग ने 'हम सबकी पुस्तक माला' भी शुरू की है जिसमें सस्ते मूल्य वाली किताबें प्रकाशित की गई हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुरस्कार सूचना और प्रसारण मंत्रालय ने 1983 में शुरू किया था। यह पुरस्कार जनसंचार विषयों पर हिन्दी में मौलिक लेखन को प्रोत्साहन देने के लिए हर वर्ष दिया जाता है। □

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम : एक विश्लेषण

डा. सी. एम. चौधरी

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार निर्धन परिवारों को रोजगार प्रदान करने हेतु 'कार्य के बदले अनाज' के रूप में सर्वप्रथम जनता सरकार द्वारा चलाया गया था। यह कार्यक्रम अक्तूबर 1980 में शुरू किया गया तथा अप्रैल 1981 से इसे एक नियमित योजना कार्यक्रम के रूप में स्वीकार कर लिया गया। यह केन्द्र द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम था जिसमें केन्द्र तथा राज्यों की बराबर-बराबर हिस्सेदारी थी। 1989-90 में इस कार्यक्रम को 'जवाहर रोजगार योजना' में विलीनीकरण कर दिया गया।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के निम्नलिखित उद्देश्य हैं :

- ग्रामीण क्षेत्रों में निर्धन परिवारों को खाली समय में रोजगार प्रदान करना,
- रोजगार के अवसरों के सृजन से निर्धन वर्ग की आय में वृद्धि करना,
- आय में वृद्धि करके ग्रामीण निर्धनता में कमी करना,
- सामुदायिक सम्पत्ति का सृजन जैसे सड़कों का निर्माण, तालाबों की खुदाई, मेड़-बन्दी, पंचायत एवं स्कूल भवनों का निर्माण, आदि,
- खाद्यान्नों के अतिरिक्त भंडारों का उपयोग करना।

लक्ष्य एवं उपलब्धियां

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम अक्तूबर 1980 में ही शुरू किया गया था। इस कार्यक्रम के लक्ष्य एवं उपलब्धियों का अध्ययन छठी पंचवर्षीय योजना तथा सातवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत किया जा सकता है। इसके लक्ष्य एवं उपलब्धियां निम्न प्रकार रही हैं :

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85)—इस योजना में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम पर 1620 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान था जिसमें 1980-81 के पश्चात् 1280 करोड़ रुपये परिव्यय की राशि में केन्द्र तथा राज्यों की बराबर-बराबर हिस्सेदारी रखी गई थी। योजनाकाल में प्रति वर्ष 30-40 करोड़ मानव दिवसों के रोजगार सृजन का लक्ष्य था। 1983-84 में इस कार्यक्रम के अंतर्गत वितरित किए जाने वाले खाद्यान्नों गेहूं तथा चावल की लागत पर 37 पैसे, 40 पैसे प्रति किलोग्राम की अनुदान राशि का प्रावधान रखा गया।

छठी पंचवर्षीय योजना में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम की प्रगति का विवरण निम्न तालिका से स्पष्ट है :

तालिका—1
राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (1980-85)

वर्ष	वास्तविक व्यय (करोड़ रुपये)	खाद्यान्नों का उपभोग (लाख टन)	रोजगार सृजन (करोड़ मानव दिवस)
1980-81	219	13.4	41.4
1981-82	318	2.3	35.5
1982-83	395	1.7	35.1
1983-84	393	1.5	30.1
1984-85	519	1.7	35.2
योग	1844	20.6	177.3

स्रोत : सातवीं पंचवर्षीय योजना खण्ड II पृ. 58

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि इस कार्यक्रम पर वास्तविक व्यय योजनाकाल में 1844 करोड़ रुपये हुआ जबकि उपलब्ध साधन 2473 करोड़ रुपये थे। इस योजनावधि में 177.3 करोड़ मानव दिवसों का सृजन किया गया जो कि औसत वार्षिक लक्ष्य के अनुरूप ही रहा है। उपलब्ध खाद्यान्न की मात्रा योजनाकाल में 28.2 लाख टन थी, लेकिन कार्यक्रम के लिए केवल 20.6 लाख टन खाद्यान्नों का उपयोग किया जा सका जो उपलब्ध मात्रा का 73 प्रतिशत था। इस कार्यक्रम के अंतर्गत योजनाकाल (1980-85) में 4.64 लाख हैक्टेयर में वन लगाने, 5 लाख हैक्टेयर भू-संरक्षण, 53 हजार तालाबों की खुदाई, 4.3 लाख किलोमीटर सड़कों का निर्माण 1.5 लाख स्कूल भवनों का निर्माण, 9 लाख हैक्टेयर भूमि के लिए सिंचाई तथा बाढ़ नियंत्रण संबंधी कार्यक्रम सम्पन्न होने से सामुदायिक परिसम्पत्तियों का सृजन करने में सफलता मिली है 1980-81 तथा 1982-83 के वर्षों में भवन निर्माण कार्य तेजी से सम्पन्न कराए गए जबकि सामाजिक वानिकी, भू-संरक्षण तथा सिंचाई कार्यक्रमों की गति शिथिल रही।

कुल प्रस्तावित खाद्यान्न के एक चौथाई से अधिक भाग का उपयोग इस कार्यक्रम में नहीं किए जाने से रोजगार के और अधिक मानव दिवसों के सृजन में बाधा रही।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90)– इस योजनाकाल में इस कार्यक्रम पर कुल 2487.47 करोड़ रुपये व्यय का प्रावधान था। इसमें केन्द्र सरकार द्वारा 1250.81 करोड़ रुपये तथा राज्य सरकारों द्वारा 1236.66 करोड़ रुपये व्यय करने थे। प्रति व्यक्ति खाद्यान्न के वितरण में वृद्धि की गई तथा राज्य सरकारों को विस्तृत कार्य सूची तैयार करके प्राथमिकताओं के अनुसार क्रियान्वित करने की सलाह दी गई थी। इस योजना में मोटे अनाज का क्रय करके आवंटन करने, प्रशिक्षित कर्मचारियों की नियुक्ति तथा सामग्री पर 50 प्रतिशत तक व्यय करने संबंधी कार्यक्रमों का समावेश किया गया।

केन्द्र सरकार ने 1988-89 के बजट में इस कार्यक्रम के लिए 529.4 करोड़ रुपये का प्रावधान किया था जिससे 4250 लाख मानव दिवसों का सृजन किया जा सके। वर्ष 1987-88 में 50 करोड़ मानव दिवसों के सृजन का लक्ष्य रखा गया। वास्तविक सृजन 65 करोड़ मानव दिवस किया गया।

मूल्यांकन

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम ग्रामीण क्षेत्रों में खाली समय में जब खेतों में काम नहीं होता, निर्धन परिवारों को रोजगार के अवसर प्रदान करने का एक सशक्त कार्यक्रम है। यह एक ओर उनकी आय में वृद्धि करके ग्रामीण निर्धनता में कमी करेगा तथा दूसरी ओर उपभोग में वृद्धि करके जीवन स्तर को उन्नत किया जा सकेगा। गोदामों में पड़े खाद्यान्न का उपयोग करके सामाजिक सम्पत्तियों का सृजन संभव हुआ है जो कि गैर-मुद्रास्फीतिकारी रहा है। छठी योजना में इस कार्यक्रम पर 1844 करोड़ रुपये व्यय करके 177.3 करोड़ मानव दिवसों के रूप में रोजगार के अवसर सृजित किए गए तथा 20.6 लाख टन खाद्यान्न का उपभोग किया गया।

सातवीं योजना के प्रथम चार वर्षों (1985-89) में 116 करोड़ मानव दिवसों के बराबर रोजगार के लक्ष्य की तुलना में 147.6 करोड़ मानव दिवसों की उपलब्धि रही है। 1989 में इस कार्यक्रम का 'जवाहर रोजगार योजना' में विलीनीकरण कर दिया गया।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि यह ग्रामीण बेरोजगारी एवं निर्धनता उन्मूलन का एक सशक्त कार्यक्रम है जिसको प्रभावी बनाया जाना चाहिए। इस कार्यक्रम के निम्न दोष हैं :

- इस कार्यक्रम में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। फर्जी मास्टर-रोल तैयार करके सरकार से भुगतान प्राप्त कर लिया जाता है। श्रमिकों को समय पर भुगतान न करना तथा अनुचित कटौती करना भी इसकी एक सबसे बड़ी दुर्बलता है।
- इस कार्यक्रम में घटिया सामग्री का उपयोग किया गया है जिससे पंचायत भवन, स्कूल भवन, पटवारी भवन, पुलियों का निर्माण आदि भी घटिया किस्म का ही हुआ।
- इस कार्यक्रम के तैयार करने तथा क्रियान्वयन में तकनीकी सहायता का अभाव रहा है जिससे विभिन्न कार्यक्रमों को वैज्ञानिक आधार नहीं दिया जा सका।
- इस कार्यक्रम के अंतर्गत अनेक वर्गों का समावेश करने से प्रभावी रूप से क्रियान्वयन नहीं हुआ है। कुछ कार्य अधिक हुए हैं जैसे निर्माण कार्य जबकि अन्य कार्यों की गति धीमी रही है जैसे सामाजिक वानिकी तथा भू-संरक्षण।

निष्कर्ष

यदि इस कार्यक्रम को केन्द्र तथा राज्य सरकारें सतर्कता एवं प्रशासनिक कुशलता के साथ-साथ ईमानदारी से क्रियान्वित करें तो ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी तथा निर्धनता उन्मूलन का एक सशक्त साधन बन सकता है। सामाजिक परिसम्पत्तियों का सृजन किया जा सकता है तथा खाद्यान्न के उपयोग से गैर-स्फीतिकारी विकास संभव हो सकेगा। इसके लिए दृढ़ राजनीतिक इच्छा शक्ति, कुशल, ईमानदार एवं सतर्क प्रशासन, जन-सहयोग तथा नागरिक चेतना आवश्यक है।

1347, जय पथ, बरकत नगर
जयपुर-302015 (राजस्थान)

धरती-धन

वासुदेव

कहानी कभी-कभी कोरी कल्पना न होकर जिंदगी की सच्चाई भी होती है। जिसे चाहे तो आप उस तबके के तमाम लोगों के जीवन की सच्चाई कह सकते हैं। यह कथा भी आदिवासी जीवन की सच्ची गाथा ही है। या यों कहें कि एक आदिवासी कुनबे के जीवन की त्रासदी, जिसका मुखिया सांवना मिंज नामक एक हरिजन आदिवासी गृहस्थ है। जिसे सच कहा जाए तो आज सड़क के किसी फुटपाथ पर भीख मांगते होना चाहिए था, किन्तु सरकारी बैंक का सहयोग और सही मार्गदर्शन का कमाल देखिए कि इन दिनों वह खाता-पीता गृहस्थ बना हुआ है। उस दिन सांवना का बाप जब मुझे अपनी पोती की शादी का निमंत्रण देने आया तब मेरे सुखद आश्चर्य की सीमा न रही थी। हां तो पूरी कहानी शुरू से ही बताता हूं।

रांची जिले के अड़की प्रखंड में एक छोटा-सा आदिवासी पारो (गांव) है, हुट। पहाड़ियों की गोद में बसे इस गांव में शत-प्रतिशत हरिजन आदिवासी हैं जिनका मुख्य पेशा है कृषि और पशुपालन। वैसे तो अन्य आदिवासी गांवों की तरह उस गांव में भी पिछड़ापन, गरीबी, अंधविश्वास आदि का एकक्षत्र साम्राज्य है किन्तु यहां के निवासियों की एक खास विशेषता यह भी है कि वे लोग कुछ ज्यादा ही मेहनती और नेकदिल तथा प्रकृति-प्रेमी होते हैं।

हां, तो उसी गांव का एक हरिजन किसान है सांवना मिंज जिसके कुनबे में माता-पिता के अलावा पत्नी, दो बेटियां और एक बेटा है। है तो वह भी एक किसान ही, किन्तु मां-बाप की बीमारी के चलते दवा-दारू में आधी से अधिक जमीन गिरवी पड़ गई है या फिर बिक गई है। इधर, कुछ माह पूर्व, एक बेटा भी बीमारी के कारण दम तोड़ गया है। पत्नी भी निरोग नहीं रहती। बराबर किसी न किसी रोग से परेशान ही रहती है। अब तो उसकी दशा ऐसी बदतर हो गई है कि न तो हाथ पर पैसे हैं और न ही उतनी जमीन ही बच रही है जिसे बेचकर पत्नी का इलाज कराता। "हारल को हरि लाकड़ी!" बस, ओझा जी की झाड़-फूंक और जंगल की जड़ी-बूटियों पर ही एकमात्र भरोसा रह गया है। हालांकि इससे कोई लाभ नहीं होने का, पर इसका कोई विकल्प भी तो नहीं है उसके पास!

अपनी गरीबी और बदहाली से लड़ते-लड़ते टूट गया है, सांवना। जो भी थोड़ी-सी खेती-बाड़ी बची हुई थी, वह भी परती पड़ गई है। पहले तो शहर जाने पर कुछ काम-धंधा मिल भी जाता था, पर अब देह-हाथ से इतना कमजोर हो चला है कि अब कोई उसे "गछता" ही नहीं है। हालांकि काम की तलाश में वह हर रोज मिलों पैदल चलकर शहर जाता, मजदूरी की तलाश में शहर के चौराहे पर बैठे मजदूरों के समूह में जा बैठता, घंटों बैठा रहता, पर अन्य मजदूर काम पर चले जाते थे, पर इसे कोई नहीं पूछता था। बेचारा पछता कर एक हाथ से कंधे पर कुदाल थामे और दूसरे से पेट सहलाते हुए आंखों में आंसू व होंठों पर क्रन्दन तथा दिमाग में आज रात और कल सुबह चूल्हा न जलने की चिंता समेटे वापस गांव लौट जाता था। कई दिनों तक ऐसा ही चलता रहा था। फलतः भूख की मार से वह टूट गया था। वह तो बड़ी लड़की की सूझबूझ की दाद देनी होगी जो गांव के किसानों से कभी बूट-झंगड़ी तो कभी जामुन, कभी आम तो कभी कटहल लेकर शहर को निकल जाती थी और शाम तक कुछ पैसे उगाह लाती थी, नहीं तो कब से सबको भूखे मरने की नौबत आ जाती। पर कुछ बिलंब से ही सही, वैसी नौबत भी आ पहुंची थी क्योंकि कई दिनों से बड़ी लड़की फगुनी भी बीमार थी और बुखार जो था, उतरने का नाम ही नहीं ले रहा था। सो वह खाट पर पड़ी-पड़ी मौत की ओर ही लुढ़कती जा रही थी। तेज बुखार का तीसरा दिन था और इतना अधिक बुखार था कि वह आंखें भी नहीं खोल पा रही थी। उसका बूढ़ा दादा कई बार लाठी टेकते हुए मेरे डेरे तक से लौट आया था, पर मुझसे भेंट ही नहीं हुई थी। एक बार ओझा जी के यहां से भी हो आया था, पर वह भी नहीं मिले थे। शायद वह दूसरे गांव में किसी मरीज की झाड़-फूंक करने निकल गए थे। सुबह ही निकले थे सो शाम तक वापस नहीं हुए थे।

ओझा जी झाड़-फूंक भी करते थे और जड़ी-बूटी भी देते थे। जैसा मरीज, वैसी दवा। वह दोनों कलाओं में माहिर थे। भले ही इससे मरीज का कितना ही बड़ा अनिष्ठ क्यों न हो जाए। खुदा न खास्ते, यदि किसी का भला हुआ, तब इनके नाम और यश

चारों ओर फैलने लगते थे, किन्तु यदि मरीज मर भी जाता था, तब उन पर किसी तरह की आंच नहीं आती थी, क्योंकि तब लोग बडे इत्मीनान से उस मरीज की मौत का कारण भगवान के मत्थे मढ़ देते थे और इसका एकमात्र कारण था गांव में अंधविश्वास और अशिक्षा।

हां, यह बात दीगर थी कि मेरे आने से इनके धंधे में थोड़ा व्यवधान जरूर आ गया था। इसका खास कारण यह था कि जरूरत पड़ने पर मैं मरीज को एलोपैथ की गोली दे देता था, वह भी मुफ्त और जब देखता था कि बीमारी खतरनाक स्थिति को पहुंच रही है, और गोली से कम होने वाली नहीं है या जब रोग मेरी समझ में नहीं आता था, तब वैसी घड़ी में मरीज को शहर पहुंचवा देता था। जरूरत पड़ने पर रुपये-पैसे से भी उनकी मदद कर दिया करता था। और यही सब कारण थे कि पारो के लोगों में एक ओर जहां ओझा जी की प्रतिष्ठा या मान-इज्जत में कमी होती जा ही थी वहीं दूसरी ओर मेरा आदर-सम्मान बढ़ता जा रहा था। इस बात को लेकर ओझा जी या उनके खेमे के लोग भले ही मुझसे खफा थे, पर मैं उस ओर से बिल्कुल ही लापरवाह था।

मैं भी सुबह से ही गांव से बाहर था। शहर गया था। कुछ किसानों को ग्रामीण विकास बैंक से कर्ज दिलवाने थे। पहली बस छूट गई थी। दूसरी पकड़ना चाहता था, पर लाख कोशिश करने पर भी दूसरी बस भी न पकड़ पाया था। तब तक सांवना मिंज का बाप लाठी टेकते हुए बस पड़ाव पर जा बैठा था। उसे एतबार था कि मैं दूसरी बस से जरूर वापस होऊंगा। बस से उतरते ही वह मुझे बुला कर घर ले जाएगा और फगुनी को दिखवाएगा। वह सोच रहा था कि मैं जब फगुनी को देखूंगा और जब वह ठीक होने लायक नहीं रहेगी तब उसे शहर ले जाऊंगा और फिर दवा-दारू के पैसे भी दूंगा। इसी आशा और विश्वास से यह घंटों बस पड़ाव पर बैठा रहा था।

लेकिन शाम तक भी शहर से मेरी वापसी नहीं हुई थी। और होती भी तो कैसे। बैंक से केवल कर्ज ही तो नहीं दिलवाने थे, अपितु उन्हें खाद, बीज, पंपिंग सेट आदि भी तो खरीदवाने थे। क्या भरोसा, दुकानदार उन्हें ठग ले! लोग मुझे रोके हुए थे, छोड़ते ही नहीं थे। —धत! सब आफत आज ही आनी थी! मन ही मन गुस्सा किया था सांवना के बाप ने। फिर खैनी-चूना मलने लगा था। और जब शाम की गोधूलि काली पड़ने लगी थी, तब वह हार कर वापस घर लौट आया था।

बुखार से तप रही थी फगुनी। अनाप-सनाप बक रही थी। घर के सारे लोग घबरा उठे थे। कोई दौड़कर ओझा जी को बुला लाया था। पर वे बिना झाड़-फूंक किए या दवा-दारू किए ही वापस हो गए थे। जाते-जाते जताते गए थे कि फगुनी का अब भगवान ही मालिक है, अब उसकी अंतिम घड़ी आ गई है, दवा-दारू करना अब एकदम से बेकार है। सब लोग ना उम्मीद हो गए थे फगुनी से। घर में रोहट मच गया था। सांवना मिंज का बाप कुछ ज्यादा ही चिंतित हो चला था। "...भगवान सिंगा बोंगा का क्या न्याय है? अब अपनी ही आंखों के सामने इस जवान पोती की मौत भी देखनी पड़ेगी! परिवार का जो अंतिम सहारा थी, अब वह भी छिन जाएगी...।" सिसकियों और आहों से घर-आंगन गमगीन हो चला था। जो लोग भी फगुनी को देखने आते, वे भी आंसू बहाए बिना नहीं रहते थे।

काफी रात गए, अंतिम बस से, जब मैं शहर से लौटा तब सीधे सांवना के घर गया। बुखार से देह तवे की तरह तप रही थी। थर्मामीटर लगाकर देखा तो एक सौ पांच। हक्का-बक्का रह गया मैं। एकदम से हतप्रभ! किंकर्तव्यविमूढ़!! झट से मेटासीन की एक गोली निगलवा दी। फिर खुद पानी की पट्टी देने लगा। कुछ लोग साफ कपड़ा से हाथ-पांव के तलवे रगड़ने लगे। आधे घंटे तक यह प्रक्रिया चलती रही। फिर थर्मामीटर लगाकर देखा, बुखार एक सौ तीन पर आ गया था। फगुनी ने आंखें खोलीं। हठात् उसकी निगाहें मुझ पर आ टिकी। नयनों के कोर में आंसू की दो बूंद भी टपक आईं। कितनी करुणा, कितनी याचना, कितनी विवशता थी। उन भोली-भाली आंखों में! अन्दर ही अन्दर गलने लगा था मैं। आधी रात के बाद ही मेरी वापसी वहां से हुई थी। तब तक उसका बुखार सौ से नीचे आ गया था और उसे थोड़ा आराम पड़ गया था।

पर पूरी रात आंखों में ही बितानी पड़ी। नींद ही नहीं आ रही थी। जब कभी आंखें लगतीं, फगुनी की करुण-मूर्ति मस्तिष्क में घूमने लगती। मैं चिहुंक कर जग जाता।

पहर-भर रात रहते ही, उठ बैठा और उसी के बारे में सोचने लगा। सांवना की माली हालत से अवगत था मैं। यदि उसे नहीं बचाया गया, तब पूरा परिवार असमय ही काल-कवलित हो जाएगा। लेकिन मैं भला उसके लिए क्या कर सकता था? यही चिंता मुझे भी सताए जा रही थी।

सुबह, तड़के ही उसके घर जा पहुंचा। फगुनी ठीक थी। मुझ पर नजर पड़ते ही उसका पीला चेहरा शरमा कर इस तरह हंस पड़ा, जैसे सूर्य को देखकर सूर्यमुखी का फूल खिल उठता है। उसके पथ्य के लिए जेब से कुछ निकाल कर सांवना की ओर बढ़ा दिए। उसका बाप पैसे लेकर लाठी टेकते हुए साहू की दुकान की ओर चल पड़ा और मैं सांवना से बतिआने लगा।

"सुनो सांवना।" मैंने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए कहा। "इस तरह हाथ-पर-हाथ रखे रहने से तो सब के सब भूखों मर जाओगे।"

"लेकिन करूं भी तो क्या? मेरी समझ में तो कुछ भी नहीं आ रहा है।" एक बहुत ही हताशा-भरा जवाब था उसका।

मैंने आगे पूछा, "तुम जानते हो कि एक किसान के लिए उसका सबसे बड़ा धन क्या होता है?"

"क्या होता है, गुरुजी?" उसने मुझसे ही सवाल कर दिया। मैंने समझाया, "धरती! जमीन!! किसी भी कृषक के लिए उसका सबसे बड़ा धन उसकी धरती होती है।" फिर आगे पूछा, "अच्छा, यह बताओ, तुम्हारे पास अब कितनी जमीन बची है?"

"यही कोई एक एकड़।"

"एक एकड़ जमीन रखकर भी तुम सब भूखे मर रहे हो? सेवा करो धरती मां की, वह तुम्हें मेवा देगी...।"

"क्या करूं? कैसे करूं?" बहुत ही विवशता के साथ कहा सांवना ने। मैंने कुछ क्षण मौन बने रहने के बाद कहा, "तुम कल मेरे साथ शहर चलो!" "लेकिन क्यों?"

"बैंक से कर्ज लेने।"

"कर्ज" इस बार वह इस तरह से चौंक उठा जैसे उसके पांव के नीचे की जमीन हठात् फट गई हो या पास ही बम का धमाका हुआ हो।

"हां, जमीन पर बैंक से कर्ज लेने।"

"जब जमीन ही नहीं रहेगी, तब कर्ज लेकर क्या होगा?" बड़े ही आश्चर्य से पूछा उसने।

मैंने समझाने का प्रयास किया, "जमीन का मतलब समझते हो? जमीन का मतलब होता है खजाना, धन-दौलत का खजाना! और बैंक उस खजाने तक पहुंचने की सीढ़ी है। जमीन पर कर्ज लेने का मतलब यह नहीं होता कि तुम्हारे हाथ से तुम्हारी जमीन निकल जाएगी। बल्कि जमीन तो तुम्हारी ही दखल में या फिर जोत में रहेगी। उल्टे बैंक तुमको रुपये देगा जिनसे उस जमीन में खेती कर सकोगे।"

शायद मेरी बातें उसकी समझ में आ रही थीं, फिर भी थोड़ा आशंकित होते हुए उसने पूछा, "लेकिन कर्ज अदा न करने पर तो जमीन नीलाम हो जाएगी।" गांव वालों में बैंक और फिर कर्ज के प्रति कुछ ऐसी ही धारणा थी। उसने भी ऐसा ही सुना था इसलिए ऐसी आशंका का होना स्वाभाविक था, जिससे कुछ क्षण के लिए मैं भी निरुत्तर हो गया था किन्तु शीघ्र ही संभलते हुए समझाने का प्रयास किया। "तुम हर माह कर्ज के रुपये का कुछ हिस्सा बैंक को लौटाते जाना। धीरे-धीरे कर्ज भी घटता जाएगा और तुम्हारी जमीन भी बची रहेगी। सरकारी कर्ज चुकाने का यही सर्वोत्तम तरीका है।"

"लेकिन यह सब होगा कैसे? क्या बैंक मुझे कर्ज भी देगा?"

"यह सब तुम मुझ पर छोड़ दो। बस, तुम कागज-पत्तर लेकर आ जाना। हम लोग पहली बस से चलेंगे।"

"ठीक है, मास्टरजी। पर जरा बापू से भी पूछ लूंगा।"

पर शायद उसके बाप ने कर्ज लेने की अनुमति नहीं दी थी क्योंकि दूसरी बस भी निकल गई थी और वह मेरे पास नहीं आया था। मेरी छोटी-सी बात जिसमें उसी की भलाई निहित थी, वह नहीं समझ पा रहा था। आखिर कारण क्या था इसका—अशिक्षा ही तो! यदि वह थोड़ा-सा भी पढ़ा-लिखा होता, तब मेरी सलाह जरूर उसकी समझ में आती और तब शायद उसकी यह दुर्दशा नहीं होती। "जमीन से कितना मोह होता है आदिवासी गृहस्थ को, पहली बार देख रहा था मैं।" पूर्वजों की थाती को वे लोग बेचना या गिरवी रखना नहीं चाहते। जो भी जमीनें बिकी थी या गिरवी पड़ी थी, वे सब पूर्वजों की कमाई नहीं थी बल्कि इन्हीं लोगों की खरीदी हुई थी यानि सांवना के बाप की।

मन न माना तो मैं खुद उस तक गया। इस बार फिर मैंने नये सिरे से समझाने का प्रयास किया, पर इस बार भी मेरा समझाना व्यर्थ ही गया। बैंक से जमीन पर कर्ज लेने के लिए तो उसे राजी न कर सका, किन्तु समझा-बुझाकर शहर ले गया और उसके नाम से एक रिक्शा जरूर निकलवा दी। वह उसी में खुश था। मुझे भी थोड़ी राहत महसूस हुई। सुबह, बहुत तड़के ही वह रिक्शा लेकर शहर को निकल जाता, दिन-भर सवारी ढोता और दोपहर रात गए वापस होता। कभी बीस तो कभी तीस, कभी पैंतीस तो कभी चालीस रुपये रोज शाम तक उसकी गांठ में दबे होते। इससे दोनों वक्त घर में चूल्हा जलने लगा था। अब भूखों मरने की आशंका जाती रही थी। माता-पिता और पत्नी की भी दवा-दारू होने लगी थी। फगुनी भी कमाने लगी थी। धीरे-धीरे पत्नी भी स्वस्थ हो चली थी और अब वह भी दस-बीस उगाह लाती थी।

कहावत है, पानी देखने से प्यास की तल्खी और बढ़ जाती है। अर्थ-लोभ ने सांवना की दिनचर्या ही बदल दी थी। अब वह बुरी तरह से रिक्शा में जुत गया था। दिन-भर तो रिक्शा चलाता ही था, अब वह रात को भी शहर में ही रुक जाता था तथा पूरी रात सवारी की तलाश में बस स्टैंड से रेलवे स्टेशन का चक्कर काटता रहता था। भूख लगने पर शहर के फुटपाथ पर ही खा लेता था और नींद आने पर रिक्शा पर ही सो जाता था। जाड़ा हो या गर्मी, वर्षा हो या आंधी, उसकी दिनचर्या कुछ ऐसी ही बन गई थी।

लक्ष्मी चंचला होती है। वह जिस रफ्तार से आती है, उसी

रफ्तार से जाने का मार्ग भी बनाती है। सांवना की जेब गरम रहने लगी थी और इसलिए उसमें अब पीने की आदत भी पड़ गई थी। लगने लगा कि उसने अपना लक्ष्य ही बना लिया है दम तक कमाना और छक कर पीना। ऐसे लोगों को न तो अपने सेहत का ख्याल रहता है और न अपने परिवार का और न ही मौत का ही भय होता है। फिर ऐसे लोगों की जो दुर्दशा होती है, वह सर्वविदित है।

एक दिन जोरों की ठंड थी। छिटपट बारिस भी। वैसे भी विगत कई दिनों से उसकी तबीयत कुछ ज्यादा ही खराब थी। फिर भी न तो वह घर ही जा रहा था और न ही रिक्शा चलाना ही बंद कर रहा था। फिर वही हुआ, जिसकी आशंका थी। रात को भीग जाने पर भी वह रिक्शा पर ही पड़ा रहा था। न जाने कब ठंड लग गई थी और वह रिक्शा पर ही ढेर हो गया था। दूसरे दिन उसकी लाश गांव आई थी।

गाज गिर गया था सांवना की मौत से उसके परिवार पर। अंतिम सहारा भी छिन गया था जो थोड़े-से पैसे उसकी पत्नी ने जोड़ रखे थे, उसके क्रिया-कर्म में खर्च हो गए थे। पूरा परिवार फिर से भुखमरी के कगार पर आ खड़ा हुआ था।

इस बीच मेरी प्रोन्नति हो गई थी और इसके साथ ही पास के गांव के माध्यमिक स्कूल में तबादला भी हो गया था। चिट्ठी आ गई थी। बस, नए शिक्षक के आने भर की देर थी जिन्हें मैं चार्ज देता, और वह भी एक-दो दिन में आने ही वाला था। इसलिए मैंने सोचा कि क्यों न एक बार सांवना के घरवालों से मिल आया जाए। हालांकि अब उसके घर जाने की मेरी हिम्मत नहीं हो रही थी। क्या पता, रिक्शा में जुतवाने और फिर उसी में जुते-जुते उसकी मौत हो जाने का कारण लोग मुझे ही मान बैठे। हालांकि मैंने जो कुछ भी किया था, उनके भले के लिए ही किया था, फिर भी न जाने क्यों मेरे अंदर उसकी मौत को लेकर एक भय जरूर घर कर गया था। लेकिन लाख चाहने पर भी मैं फगुनी को नहीं भूला पाता था। न जाने क्यों सांवना के मर जाने से उसकी चिंता और बढ़ गई थी। किसी तरह मन को समझाया और उसके घर गया किन्तु उसकी माली हालत देख कर मुझे भी रुलाई आ गई। मुझे लगा, फिर से सबके सब महाकाल को जाने वाली राह पर पहुंच गए हैं। फगुनी की हालत सबसे बदतर थी। बेचारी यौवनावस्था में भी माटी होती जा रही थी। मुझे दया आ गई। इस बार मैंने सांवना के बाप तथा उसकी पत्नी को समझाने का प्रयास किया। हालांकि उसका बाप तो अभी भी मेरी बात सुनने को तैयार नहीं था, किन्तु सांवना की विधवा और बेटी फगुनी को मेरा सुझाव भला लगा। उन दोनों के दबाव से ही एक दिन सांवना का वृद्ध बाप कागज-पत्तर के साथ बैंक चलने को तैयार हो गया।

ग्रामीण बैंक से कर्ज के रूप में जो रुपये मिले, उन रुपयों से पहले तो उसने एक बैल खरीदा। कुआं तो अपना था ही, उसी को "उरहवा" दिया और एक पंपिंग सेट खरीद लिया। कुछ खाद-बीज भी खरीदे। जो भी थोड़ी-सी जमीन थी, पूरा परिवार उसी में लग गया। सब्जी की खेती की, पास में शहर था। हरी-हरी सब्जियां रोज-रोज शहर ले जाकर बेचने से प्रति दिन पच्चीस-पच्चास रुपये हाथ पर आने लगे। मैंने बकरियां और सुअर भी पालने का सुझाव दिया। सांवना की मां को यह धंधा बहुत अच्छा लगा। कहावत है, 'डूबने को तिनके का सहारा!' सांवना के परिवार को सहारा मिल गया था और सब के सब मझधार में डूबने से बच गए थे।

अपनी पोती की शादी में सम्मिलित होने के लिए निमंत्रण देने जब वह स्कूल में आया और सारी बातें जब उसने मुझे सुनाई, तब बेहद प्रसन्नता हुई। आज भले ही सांवना जिंदा नहीं है, पर उसका परिवार खुशहाल जरूर है।

करमटोली, रांची-834008

अगर हमें करोड़ों देशवासियों की आशाओं व आकांक्षाओं को पूरा करना है तो हमें संगठित होना पड़ेगा तथा जाति और समुदाय, वंश और धर्म, भाषा और प्रांत के विचार को प्रगति में बाधक बनने से रोकना होगा। भारत एक है और यदि एक हिस्सा किसी दूसरे हिस्से को नुकसान पहुंचाता है तो सम्पूर्ण देश को नुकसान होगा।

डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन

ग्रामीण स्वास्थ्य रक्षा की समस्याएं एवं समाधान

डा. रमेश चन्द्र तिवारी

हमारे देश में लगभग 5,76,126 गांव हैं। इन गांवों में सम्पूर्ण जनसंख्या की लगभग 52 प्रतिशत आबादी निवास करती है। इनका मूल पेशा कृषि एवं मजदूरी है। इनमें करीब 22 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन-यापन कर रहे हैं। इनकी औसत आयु 45 वर्ष (पुरुष) एवं 48 वर्ष (महिला) है। यहां 60 हजार बच्चे प्रतिदिन जन्म लेते हैं। इनमें से लगभग 25 हजार बच्चों की मृत्यु कुपोषण एवं उचित चिकित्सा सुविधाओं के अभाव में हो जाती है। प्रतिदिन लगभग एक हजार लोगों की मृत्यु असाध्य रोगों, पौष्टिक आहार एवं उपचार न होने के कारण हो जाती है। ग्रामीण स्वास्थ्य रक्षा में मुख्य रूप से बाधक तत्व गरीबी, अशिक्षा, रूढ़िवादी विचार, प्राकृतिक प्रकोप, यातायात साधनों की कमी, स्वास्थ्य केन्द्रों की कमी, सम्पूर्ण दवाओं की अनुपलब्धता, नशीली वस्तुओं के सेवन की आदत, आदि हैं। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य समस्याएं भी गांव की स्वास्थ्य रक्षा के लिए बाधक हैं। यथा-वातावरण का दूषित होना, स्वच्छ पेयजल का अभाव, मल-मूत्र एवं कूड़ा-करकट के निस्तारण की समुचित व्यवस्था का न होना, कीड़ों-मकोड़ों आदि को नष्ट करने के लिए छिड़काव का उचित प्रबंध न होना, पशुओं के लिए पर्याप्त चारागाहों का न होना आदि।

भारतवर्ष, गांवों का देश माना जाता है। आजादी के 43 वर्षों के बाद भी हमारी सरकार गांवों में स्वच्छ जल की व्यवस्था नहीं कर पाई है। स्वस्थ रहने के लिए शुद्ध जल की उपलब्धता अत्यंत आवश्यक है। लेकिन आज भी अधिकांश गांवों में पीने एवं स्नान हेतु स्वच्छ जल उपलब्ध नहीं है। पुराने कुओं की मरम्मत न होने के कारण वे या तो बेकार हो गए हैं अथवा सूख गए हैं। यदि कुछ बचे भी हैं तो उनका जल इतना प्रदूषित हो गया है कि यदि उसका उपयोग किया जाए तो लोगों का स्वास्थ्य और भी खराब हो जाने की सम्भावना रहती है। नवीन कूप निर्माण का कार्य धनाभाव के कारण कम हो पा रहा है। जो नए कुएं बन भी रहे हैं वे कच्चे होने के कारण शीघ्र धराशायी हो जाते हैं। प्रायः गांवों में पशुओं को पीने के लिए पानी का प्रबंध छोटे-बड़े तालाबों से किया जाता था परन्तु अब तालाबों का पानी अत्यंत प्रदूषित हो गया है। जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीणों एवं उनके मवेशियों का स्वास्थ्य अत्यधिक प्रभावित हो गया है। हमारे देश में आज भी लगभग एक लाख गांवों में पीने का साफ-सुथरा पानी उपलब्ध नहीं है। प्रदूषित एवं कीटाणुयुक्त पानी पीकर लोग बीमार होते जा रहे हैं।

गांवों में प्रायः घरों के आस-पास लोग कूड़ाकरकट इकट्ठा करते हैं। इसके कारण अनेक तरह के कीटाणु हवा द्वारा घरों के अन्दर पहुंचते हैं जो खाद्य पदार्थों को प्रदूषित करके मनुष्य के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। अधिकांश गांवों में घरों का गंदा पानी कच्ची नालियों में अथवा बिखरे रूप में बहता रहता है। इस गंदे पानी के निकास हेतु समुचित नालियां भी नहीं हैं। ग्रामीणों को साफ-सुथरे रास्ते भी चलने को नसीब नहीं होते। गंदगी से उनके पैर सने होते हैं। ऐसे में उनका स्वास्थ्य खराब नहीं होगा तो क्या होगा? गंदगियों के कारण बहुत-से कीटाणुओं एवं जीवाणुओं का जन्म होता है जो कई प्रकार की भयंकर बीमारियों को पैदा कर उनके स्वास्थ्य को खराब कर देते हैं।

भारतीय गांवों के अधिकांश घरों में शौचालय नहीं होते हैं। पुरुषों एवं महिलाओं को शौच हेतु बाहर जाना पड़ता है। महिलाओं द्वारा शौच हेतु सड़कों अथवा नहरों के किनारे जाने का एक प्रमुख कारण है गांव में पेड़-पौधों और झाड़ियों का अभाव। पहले लोग अपनी आवश्यकतानुसार घरों के आस-पास या कुछ दूरी पर बाग-बगीचे लगाया करते थे। अब यह परम्परा टूटती जा रही है जिससे ग्रामीण वातावरण भी प्रदूषित होने लगा है। अधिकांश घरों में ऐसे चूल्हे हैं जिनमें अत्यधिक धुआं निकलता है, परिणामस्वरूप ग्रामीण महिलाओं में नेत्र रोग जैसे ट्रायकोमा तथा सांस रोग अधिकाधिक संख्या में पाया जाता है। इन स्थितियों से ग्रामीणों का स्वास्थ्य बराबर खराब होता जा रहा है।

बीमारी से बचने एवं स्वस्थ्य रहने की कोई सुदृढ़ व्यवस्था गांवों में नहीं है। विकास प्रखण्डों के अधीन कुछ स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना अवश्य की गई है। परन्तु यहां न तो समुचित दवा का प्रबंध है और न ही पर्याप्त मात्रा में शैयाएं ही मरीजों को सुलभ हो पाती हैं। इन स्वास्थ्य केन्द्रों के चिकित्सक उपलब्ध दवाओं को बेचकर अर्थोपार्जन करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत रूप से रोगी को देखने में सर्वाधिक समय व्यतीत

करते हैं। स्वास्थ्य केन्द्रों के अन्य कर्मचारियों का अधिकांश समय अपने घरों पर व्यतीत होता है और वे निजी कार्यों में ही अभिरुचि रखते हैं। ऐसी स्थिति में दीन-हीन ग्रामीण उपलब्ध स्वास्थ्य सुविधाओं से भी वंचित रह जाते हैं। गांव के गरीब व्यक्तियों का कोई उपचार नहीं हो पाता है। ये साधनहीन, आर्थिक रूप से कमजोर, गरीब, छोटी-बड़ी बीमारियों से घुट-घुट कर गांव में ही मर जाने को मजबूर हो जाते हैं।

यदि कहीं-कहीं गांवों में कुछ दूर एकाध अच्छे अस्पताल उपलब्ध भी होते हैं तो वहां तक यातायात की समुचित व्यवस्था न होने के कारण ग्रामीण इन अस्पतालों की सेवाओं का लाभ नहीं उठा पाते. ग्रामीणों में आज भी बहुत-से रूढ़िगत विचार एवं परम्पराएं प्रचलित हैं। अतः बहुत-सी मानसिक अथवा मनोवैज्ञानिक बीमारियों का इलाज वे झाड़-फूंक, ओझा आदि के द्वारा अथवा पशु बलि देकर सम्पन्न करते हैं। जबकि इनसे इन बीमारियों का इलाज बिल्कुल सम्भव नहीं है। परिणामस्वरूप रोग बढ़ता जाता है और मरीज की मृत्यु हो जाती है। अतः गांवों के रूढ़िगत एवं परम्परावादी विचार भी स्वास्थ्य की समस्या को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रहे हैं। उनका अशिक्षित होना प्रमुख कारण है।

गांवों में अब पशु पालन का स्वरूप काफी बदल गया है। गाय-भैंस का पालन कम हो गया है जिससे उन्हें दूध कम मात्रा में उपलब्ध हो रहा है। अतः भोजन की पौष्टिकता कम हो गई है। यह भी उनके स्वास्थ्य को प्रभावित कर रही है।

स्वास्थ्य के सम्बंध में सरकारी प्रयास

सरकार स्वास्थ्य की मद में हर पंचवर्षीय योजना में निरन्तर पूंजी में वृद्धि करती जा रही है परन्तु आबादी के बढ़ने की दर इतनी अधिक है कि इसका लाभ समुचित रूप से लोगों को नहीं मिल रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति से अब तक देश की जनसंख्या दुगुनी हो गई है। यदि इसकी रफ्तार पर काबू नहीं किया गया तो यह सन् 2000 तक एक अरब सैंतीस हजार तक पहुंच जाएगी जिससे हमारे सामने स्वास्थ्य रक्षा की समस्या और बढ़ जाएगी। अतः आबादी में कमी लाकर ही स्वास्थ्य की सुविधा सर्वसाधारण को सुलभ कराई जा सकती है। गांधीजी ने भी इस सम्बंध में कहा है कि 'बच्चों का जन्म इतना सीमित हो कि उनका पालन-पोषण ठीक ढंग से हो सके। उनको भला-चंगा रखा जा सके। बच्चे समाज तथा राष्ट्र के लिए भार न बन सकें।' प्रथम पंचवर्षीय योजना से सातवीं योजना तक स्वास्थ्य के ऊपर व्यय की गई धनराशि का विवरण निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाता है। इस तालिका से यह भी ज्ञात हो रहा है कि प्रत्येक योजना में स्वास्थ्य के मद में ज्यादा व्यय करने के उपरान्त भी आबादी की वृद्धि के कारण स्वास्थ्य लाभ का प्रतिशत घटता ही गया है।

योजना अवधि	कुल योजना निवेश परिव्यय करोड़ रुपये में	स्वास्थ्य पर परिव्यय	कुल निवेश में स्वास्थ्य का प्रतिशत
पहली योजना	1,960.00	65.20	3.30
दूसरी योजना	4,672.00	140.80	3.00
तीसरी योजना	8,576.50	225.90	2.60
वार्षिक योजना	6,625.40	140.20	2.10
चौथी योजना	15,778.80	355.50	2.10
पांचवीं योजना	39,426.20	760.80	1.90
वार्षिक योजना	12,176.50	223.10	1.82
छठी योजना	97,500.00	1,821.10	1.86
सातवीं योजना	1,80,000.00	3,392.89	1.88

स्रोत—भारत 1988-89

स्वास्थ्य सुविधाओं में विकास

करीब तीन दशकों के योजनाबद्ध विकास के परिणामस्वरूप स्वास्थ्य सुविधाओं में व्यापक सुधार हुआ है। यद्यपि डाक्टरों और अस्पतालों में शैयाओं की संख्या में ढाई गुना से अधिक वृद्धि हुई है फिर भी बढ़ती हुई आबादी की दर के अनुपात में अभी भी कम है। नर्सों की संख्या 6 गुना बढ़ी है। पहली योजना में मेडिकल कालेजों की संख्या 30 थी जो बढ़कर 125 हो गई है। 31 दिसम्बर 1987 को ग्रामीण क्षेत्रों में 14,609 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, सहायक स्वास्थ्य केन्द्र और 1,02,62,434 उप केन्द्र कार्य कर रहे थे। 1951 से पहले देश में किसी भी तरह के स्वास्थ्य केन्द्र नहीं थे। मलेरिया, तपेदिक और हैजा, प्लेग जैसे रोगों से बड़ी संख्या में मौतें होती थीं। पर अब इन पर नियंत्रण हो चुका है। 1967 के बाद देश में प्लेग का कोई भी मामला सामने नहीं आया है। चेचक का उन्मूलन हो गया है। 1951 में भारत की मृत्यु दर 27.4 प्रति हजार थी जो घटकर 1986 में 11.1 प्रति हजार रह गई है। 1941-51 में जन्म लेने वाले बच्चों की औसत संख्या 32 थी जो 1981-86 में बढ़कर 56 हो गई। सन् 1950 के दशक में देश में बाल मृत्यु दर 146 थी जो 1986 में घटकर 96 हो गई। इन आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि स्वास्थ्य सुविधाओं में विकास हुआ है। परन्तु तीव्र गति से जनसंख्या वृद्धि के कारण यह विकास स्पष्ट दृष्टिगोचर नहीं हो पा रहा है।

ग्रामीण क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना

स्वास्थ्य सुविधाओं के विस्तार कार्यक्रम के अन्तर्गत 31 दिसम्बर 1989 तक देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वालों के प्राथमिक स्वास्थ्य रक्षा की सुविधा 16,954 प्राथमिक स्वास्थ्य

केन्द्रों 1,12,103 उप केन्द्रों और 1,469 सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्रों द्वारा उपलब्ध कराई जा रही है। इसके अलावा ग्राम स्तर पर 5.66 लाख प्रशिक्षित दाईयां, 3.94 लाख स्वास्थ्य गाईड तथा राज्य सरकारों व केन्द्र शासित प्रदेशों के प्रशासनों द्वारा चलाए जा रहे ग्रामीण दवाखाने भी काम कर रहे हैं। इस सुविधा का एक समयबद्ध कार्यक्रम के अंतर्गत विस्तार करने की योजना बनाई गई है। नई योजना में 30,000 ग्रामीण और जनजातीय इलाकों में 20,000 की आबादी के लिए एक प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, 5,000 (पहाड़ी और जनजातीय इलाकों में 3,000) की आबादी के लिए एक स्वास्थ्य उप केन्द्र 31 मार्च 1990 तक उपलब्ध करा दिया गया। सन् 2000 तक लगभग एक लाख की आबादी के पीछे एक सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र होगा।

ग्रामीण चिकित्सा प्रणाली

ग्रामीण क्षेत्रों में करीब 3.05 लाख पंजीकृत चिकित्सक कार्य कर रहे हैं। सातवीं योजना में 22 लाख बच्चे और नौ करोड़ पच्चीस लाख गर्भवती महिलाओं को टीके लगाने की योजना थी। यह योजना सम्पूर्ण भारत के 307 जिलों में लागू की गई है।

गांवों में पौष्टिक आहार की बहुत बड़ी समस्या है। सर्वेक्षणों से यह पता चला है कि प्रोटीन, कुपोषण और विटामिन तत्वों की कमी से होने वाली बीमारियां समाज में काफी बड़े क्षेत्र में आम है। इनका सबसे बुरा असर छोटे बच्चों, गर्भवती, स्तनपान कराने वाली महिलाओं पर पड़ता है। भोजन में विटामिन 'ए' की कमी से बच्चे में होने वाली अंधेपन की रोकथाम के लिए स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं द्वारा हर 6 महीने में ग्रामीण स्वास्थ्य केन्द्रों पर विटामिन 'ए' की खुराक दिलाई जाती है। गर्भवती महिलाओं को आयरन की गोलियां स्वास्थ्य केन्द्रों द्वारा वितरित की जा रही हैं।

ग्रामीण पेयजल आपूर्ति कार्यक्रम

यह प्रारम्भ में ही कहा जा चुका है कि आज भी लगभग एक लाख गांवों को शुद्ध पेयजल नहीं मिल पा रहा है। अतः इस तरफ केन्द्र सरकार का ध्यान गया है। गांवों में पेयजल आपूर्ति हेतु एक राष्ट्रीय मिशन स्थापित किया गया है। इसका उद्देश्य 1990 तक देश के सभी गांवों में पीने के पानी की व्यवस्था करना था, परन्तु धनाभाव एवं राजनैतिक तथा सामाजिक वातावरण के उपयुक्त न होने के कारण यह लक्ष्य आज भी अधूरा है। पेयजल के संदर्भ में समस्याग्रस्त गांव उसे माना जाता है जहां 1.6 किलोमीटर दूरी तक या 15 मीटर गहराई पर पानी का कोई स्रोत नहीं है। दूसरे प्रकार के समस्याग्रस्त गांव वे हैं जहां उपलब्ध पानी में खारापन, लौह तत्व, फ्लोराइड या अन्य विषाक्त तत्व हैं। समस्याग्रस्त गांवों में पानी पहुंचाने के बाद आम शर्तों के अनुसार गांव में पेयजल की व्यवस्था करने अर्थात् आधे किलोमीटर की दूरी तक पेयजल की सुविधा देने और जल आपूर्ति के वर्तमान स्तर 40 लीटर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन में वृद्धि करके 70 लीटर प्रति व्यक्ति प्रतिदिन करने की योजना है। इसके अलावा 150 लोगों की संख्या पर जल स्रोत (हैण्डपम्प या स्टैण्ड पोस्ट के साथ नलकूप) की व्यवस्था करने का प्रस्ताव है जबकि इस समय 250-300 की आबादी पर एक जल स्रोत का प्रावधान किया जाता है। इस काम में उन ग्रामीण क्षेत्रों को प्रमुखता दी जा रही है जहां अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लोगों की आबादी अधिक है। सातवीं योजना में 1,62,000 गांवों में पेयजल का प्रबंध किया गया। फिर भी इस संदर्भ में अभी बहुत कुछ किया जाना अपेक्षित है।

केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम

गांवों की दूसरी प्रमुख समस्या सफाई और स्वच्छता की है। केन्द्रीय ग्रामीण स्वच्छता कार्यक्रम का उद्देश्य गांवों में सफाई के प्रबंध में तेजी लाना है। ताकि लोगों का रहन-सहन बेहतर बने और ग्रामीण महिलाओं की गरिमा तथा निजी स्तर में वृद्धि हो सके। इस क्रम के अंतर्गत ग्रामीणों के घरों में स्वच्छ शौचालयों का निर्माण करके उनको शौच सम्बंधी सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं। केन्द्रीय सरकार द्वारा यह अत्यंत महत्वपूर्ण कार्यक्रम संचालित किया जा रहा है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के परिवारों के मामले में खर्च का कुछ भाग अंशदान के रूप में दिया जाता है और बाकी राशि परिवार स्वयं वहन करता है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत 1987-88 में तथा 1988-89 के दौरान प्रतिवर्ष 20 करोड़ रुपये जारी किए गए। 1989-90 के वर्ष में इसी कार्यक्रम पर 40 करोड़ रुपये व्यय किए गए। इसके बावजूद भी अभी तक ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालयों की स्थिति बहुत खराब है। विशेषकर महिलाओं के लिए यह स्थिति अत्यंत कष्टदायक है। इसके परिणामस्वरूप उन्हें अनेक बीमारियों का शिकार होना पड़ता है। उनका स्वास्थ्य इस विशेष समस्या से अत्यधिक प्रभावित होता है क्योंकि उनमें लज्जा और संकोच पुरुषों की अपेक्षा अधिक होता है।

ग्रामीण स्वास्थ्य सम्बंधी समस्याओं को ध्यान में रखते हुए नई योजना में सरकार द्वारा प्रत्येक पांच हजार की आबादी पर गांव में एक स्वास्थ्य उप-केन्द्र खोलने की योजना है। इनमें प्रशाविका (बहुउद्देश्यीय महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ता) एवं एक दाई भी नियुक्त की जा रही है। जिनके द्वारा गर्भवती महिलाओं को प्रसव पूर्व, प्रसव के समय एवं प्रसव के बाद समुचित सेवाएं

प्रदान की जाएंगी। जच्चा-बच्चा के लिए सभी प्रकार के प्रतिरक्षण के टीके, रक्त की कमी के बचाव के लिए औषधि दिए जाने की व्यवस्था है। अभी तक 10 हजार की आबादी पर उनके द्वारा सुविधाएं दी जाती थीं। गांवों में अब प्रत्येक एक हजार की आबादी पर एक जनस्वास्थ्य रक्षक की नियुक्ति की गई है, जो साधारण रोगों के उपचार के साथ ही काली खांसी, डिप्थीरिया, टिटनेस, पोलियो आदि के बचाव के टीके लगाते हैं। अंधेपन के बचाव के लिए विटामिन 'ए' के घोल का वितरण करने की भी जिम्मेदारी इन्हीं की है। यद्यपि सैद्धांतिक रूप से तो सरकार ने रोगों से बचाव के लिए कई व्यवस्थाएं कर रखी हैं परन्तु व्यावहारिक रूप से इन व्यवस्थाओं का काम जनसामान्य को सुलभ नहीं हो पा रहा है। भारत सरकार सन् 2001 तक स्वास्थ्य रक्षा की सभी सुविधाएं गांव के प्रत्येक घर तक पहुंचाने का लक्ष्य नियत कर चुकी है परन्तु इन लक्ष्यों के क्रियान्वयन में लगे अधिकारी, कार्यकर्ता एवं आम जनता यदि ईमानदारीपूर्वक अपनी भूमिकाओं का सम्पादन तथा सहयोग नहीं करेंगे तो लक्ष्य प्राप्त करना काफी दुरूह कार्य होगा।

महत्वपूर्ण सुझाव

- ग्रामीण स्वास्थ्य के संदर्भ में यह आवश्यक है कि प्रखण्ड के स्वास्थ्य विशेषज्ञ एवं कार्यकर्ता ग्रामीण आबादी के स्वास्थ्य एवं सफाई की आवश्यकताओं को पूरा करने में मदद करें।
- एक स्थाई दवाखाना, एक पर्यटक स्वास्थ्य केन्द्र तथा एक मात्र शिशु कल्याण केन्द्र द्वारा ग्रामीणों को आवश्यक चिकित्सा सम्बंधी सहायता दी जानी चाहिए।
- ग्राम सफाई तथा अड़ोस-पड़ोस की स्वच्छता सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। इससे रोगों के उत्पन्न होने से बचाया जा सकता है। गांव की सफाई, कूड़ा फेंकने का स्थान नियत करना, मक्खियों को दूर करना, गंदे गड्ढों को, जिनसे मच्छर फैलते हैं, पाटना आदि इस संदर्भ में बहुत ही आवश्यक कार्य हैं।
- ग्रामीणों को पीने का स्वच्छ जल उपलब्ध कराया जाना चाहिए। इसके लिए पम्प लगे नलकूपों का निर्माण किया जाना चाहिए। यदि पक्के कुओं का निर्माण सम्भव न हो तो ऐसा प्रयास किया जाए कि कुओं के आस-पास पानी न लगने पाए जिससे कीचड़ न बन सके। इसके लिए उचित जल निकास की व्यवस्था की जाए।
- रोगों को फैलने से रोकने के लिए व्यापक प्रयास किया जाना चाहिए। इसके लिए ग्रामीणों को शिक्षित करने एवं प्रेरणा देने की आवश्यकता है।
- हैजा तथा चेचक, डिपथिरिया, काली खांसी, पोलियो, टेटनेस से बचाव के लिए निरोधक टीके लगवाने की आवश्यकता के सम्बंध में ग्रामीणों को अच्छी तरह समझाया जाना चाहिए।
- मलेरिया, तपेदिक, यौन रोग, कैंसर, अंधता, कुष्ठ रोग, घेघा रोग, आदि का नियंत्रण वैज्ञानिक तरीकों से किया जा सकता है। इन रोगों के सम्बंध में ग्रामीणों में प्रचलित मिथ्या अवधारणाओं को दूर किया जाना चाहिए।
- उपरोक्त रोगों को दूर करने के लिए प्रखण्ड का डाक्टर स्कूलों में जाकर बच्चों के स्वास्थ्य का परीक्षण करके रोग का पता लगाए एवं उनके सुधार हेतु अभिभावकों को सलाह दे।
- ग्रामीणों के आहार में सुधार, व्यायाम करने की सलाह तथा घरों में ठीक ढंग से रहने की भी शिक्षा दी जानी चाहिए।
- ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यक्रम में यह भी सम्मिलित है कि पंचायत या प्रखण्ड विकास समिति द्वारा जनता में शिशु कल्याण, परिवार नियोजन, ग्राम सफाई इत्यादि के बारे में विशेष जानकारी प्रसारित की जानी चाहिए।
- गांव की सड़कें, नालियों तथा संडास में सुधार किया जाना चाहिए। गांव की सड़क का सम्बंध मुख्य सड़क से अवश्य जुड़ा होना चाहिए।
- रसोईघरों में धूम्ररहित चूल्हे लगवाने का प्रचार करना अति आवश्यक है ताकि ग्रामीण महिलाओं को नेत्र रोगों से बचाया जा सके।
- घरों में प्रकाश तथा हवा के प्रवेश की व्यवस्था करना बहुत जरूरी है।
- पौष्टिक आहार सस्ते ढंग से कैसे प्राप्त किया जा सकता है, इस संदर्भ में ग्रामीणों को शिक्षित किया जाना चाहिए।
- ग्रामीणों को उत्तम स्वास्थ्य कायम रखने हेतु नशीली वस्तुओं के सेवन का परित्याग करने की सलाह दी जानी चाहिए।

समाज कार्य विभाग
काशी विद्यापीठ, वाराणसी-221002

कोटा जिले में पिछड़े वर्ग के कल्याण कार्यक्रम

प्रभात कुमार सिंघल

सरकार राजस्थान में पिछड़े वर्ग अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं आदिवासियों के आर्थिक उत्थान व कल्याण के लिए अनेक योजनाओं एवं कार्यक्रमों के माध्यम से प्रयास कर रही है। बीस सूत्री कार्यक्रम में इन वर्गों के लिए विशेष कार्यक्रम है। राज्य का समाज कल्याण विभाग इनके लिए सतत् कार्यरत है। स्वयंसेवी संस्थाएं भी इस दिशा में पीछे नहीं हैं। आदिवासियों के कल्याण के लिए जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग एवं अनुसूचित जाति विकास निगम पृथक से कायम किए गए हैं। इन कार्यक्रमों के माध्यम से राजस्थान के कोटा जिले में भी भगीरथ प्रयास किए गए हैं।

समाज कल्याण के प्रयास

समाज कल्याण विभाग के माध्यम से अनुसूचित जाति एवं जनजाति के अलावा असहाय, विधवा एवं अपंगों के कल्याण के अनेक कार्यक्रम कोटा जिले में संचालित हैं। ऐसे वर्ग के छात्रों में शिक्षा के प्रति रुचि जागृत करने के लिए 20 राजकीय एवं 5 स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा संचालित (अनुदानित) कुल 25 छात्रावासों के माध्यम से करीब एक हजार छात्र लाभान्वित हो रहे हैं। इनमें कक्षा 6 से 11 तक 170 रुपये प्रति माह शाला में उपस्थिति के आधार पर वृत्तिका छात्रों की मैस समिति को उपलब्ध कराई जाती है। वर्ष 1989-90 में छात्रवृत्ति योजना के अंतर्गत 26 हजार 406 पिछड़ी जाति के विद्यार्थियों को 45 लाख 53 हजार 625 रुपये की छात्रवृत्ति उपलब्ध कराई गई। दो व्यक्तियों को बेरोजगारी वृत्तिका के रूप में 1420 रुपये उपलब्ध कराए गए।

पिछड़े वर्ग के 13 लोगों को 7800 रुपये तथा विमुक्त एवं घुमन्तु जाति के 20 लोगों को 10,000 रुपये आवासीय अनुदान सहायता के रूप में उपलब्ध कराए गए। पिछड़े वर्ग के नुकसान, आगजनी, गंभीर चोट एवं मारपीट के 17 मामलों में 30 हजार रुपये की सहायता उपलब्ध कराई गई। पूर्व परीक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रम के अंतर्गत अनुसूचित जाति एवं जनजाति के व्यक्तियों को आशुलिपिक 20, पटवारी 20, बैंकिंग लिपिक 34 एवं लेखाकार 16 कुल 90 आशार्थियों को प्रशिक्षण देकर 14,568 रुपये मासिक वृत्तिका के रूप में उपलब्ध कराए गए।

विकलांगों को कृत्रिम पैर

विकलांग कल्याण

मूक, बधिर एवं अस्थि विकलांगों के कल्याण के लिए छात्रवृत्ति एवं कृत्रिम उपकरण उपलब्ध कराने की योजनाएं संचालित हैं। छात्रवृत्ति योजना के अंतर्गत कक्षा 1 से 8 तक 885 छात्रों को साढ़े तीन लाख रुपये तथा कक्षा 9 से कालेज

स्तर तक 197 छात्रों को एक लाख 62 हजार रुपये की छात्रवृत्ति राशि उपलब्ध कराई गई। बारह विकलांगों को ट्राईसाइकिल, 5 को सिलाई मशीन तथा 3 को स्वरोजगार हेतु (कुल 20 विकलांगों को) 22 हजार रुपये की सहायता उपलब्ध कराई गई। चार विकलांगों को स्वीकृत बैंक ऋण पर 9 हजार 303 रुपये का विभागीय अनुदान उपलब्ध कराया गया।

चालू वित्तीय वर्ष में विकलांग प्रमाण पत्र उपलब्ध कराने के लिए स्वयंसेवी संस्था चिकित्सा सेवा समिति द्वारा आयोजित शिविर में 2 हजार से अधिक विकलांगों की जांच की गई तथा 791 विकलांगता प्रमाण पत्र विभिन्न सुविधाओं के लिए उपलब्ध कराए गए। कोटा में 8 लाख रुपये की लागत से जिला पुनर्वास केन्द्र भवन बनकर तैयार हो गया है। इस केन्द्र द्वारा महावीर विकलांग सहायता समिति के सहयोग से मार्च, 90 तक 1423 विकलांगों को कृत्रिम उपकरण उपलब्ध कराकर लाभान्वित किया गया है।

अनुसूचित जाति निगम के प्रयास

राजस्थान के अन्तर्गत अनुसूचित जाति विकास निगम के माध्यम से पैकेज कार्यक्रम शहरी क्षेत्र के अनुसूचित जाति के कमजोर आय वर्ग के परिवारों को स्वरोजगार हेतु स्वीकृत बैंक ऋण पर 50 प्रतिशत अनुदान के तहत 765 व्यक्तियों को लाभान्वित किया गया। आटोरिक्शा 40 व्यक्तियों को उपलब्ध कराए गए। दुकान योजना में 23 व्यक्तियों को दुकानों का आवंटन किया गया। अनुसूचित जाति के शहरी युवक-युवतियों को स्वरोजगार हेतु विभिन्न व्यवसायों में 368 को प्रशिक्षण दिया गया।

ग्रामीण क्षेत्र की योजना के अंतर्गत 40 सामुदायिक पम्पसेट, 135 सिंचाई कुओं को गहरा कराना, 43 को दुकान आवंटन, 29 शिल्पकारों एवं 6 बुनकरों के लिए शेड तथा 33 को कृषि संयंत्र उपलब्ध कराकर लाभान्वित किया गया है।

बाल गृह योजना

समाज कल्याण विभाग के सहयोग से चार निराश्रित बालगृह श्रीकरणी नगर विकास समिति, कोटा को 88 हजार रुपये, मधु स्मृति महिला एवं बाल कल्याण संस्थान, रंगबाड़ी को 1 लाख 32 हजार रुपये, ग्राम सेवा विद्यापीठ कन्यादेह (किशनगंज) को 88 हजार रुपये तथा बाल सेवा केन्द्र शाहबाद को 34 हजार 560 रुपये का अनुदान वर्ष 1989-90 में उपलब्ध कराया गया। ये संस्थाएं बाल एवं महिला कल्याण की विविध गतिविधियां संचालित करती हैं।

विकलांगों को ट्राइसाइकिलें

आदिवासी कल्याण कार्यक्रम

जिले के आदिवासी सहरियों के विकास एवं कल्याण के लिए सहरिया विकास उपयोजना संचालित है। इस योजना में 1981 की जनगणना के अनुसार तहसील शाहबाद एवं किशनगंज में निवास करने वाले 34 हजार सहरियों के लिए यह योजना वर्ष 1978-79 में आरंभ की गई थी। इस योजना में गत वित्तीय वर्ष तक 2 करोड़ 60 लाख रुपये इनकी शिक्षा, कृषि, सिंचाई, पेयजल चिकित्सा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास पर व्यय किया गया है।

बीस सूत्री कार्यक्रम में प्रयास

इस कार्यक्रम के तहत पिछड़े वर्ग के आर्थिक उत्थान की दृष्टि से कृषि एवं अकृषि कार्यों के अंतर्गत गत वर्ष 10 हजार 781 परिवारों को आर्थिक संसाधन उपलब्ध कराए गए।

सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी
सूचना केन्द्र, कोटा-324001 (राजस्थान)

स्वास्थ्य एवं पोषाहार का सपना घाटोल की बाल विकास परियोजना

हरीश व्यास

घाटोल निवासी आज से एक दशक पूर्व अगर किसी को उल्टी-दस्त भी हो जाए तो सीधे माताजी के थानक पर जाते थे। अगर सांप काट जाए तो देवरे की तरफ दौड़ पड़ते थे, नारियल-अगरबत्ती साथ ले जाते थे। बीमारियों के बारे में ग्रामीणों की यह आस्था कितनी भी गहरी हो, लेकिन हैं अंधी आस्था, परन्तु अब लोग अंधविश्वासी नहीं हैं।

घाटोल की ही हरिजन बस्ती में आज से कोई 7-8 वष पूर्व डेढ़ दर्जन टी.बी. के मरीज थे, अब यह प्रकोप प्रायः लुप्त-सा है। घाटोल की बाल विकास परियोजना और रेफरल हॉस्पीटल की बदौलत इस परियोजना क्षेत्र में 85 प्रतिशत टीकाकरण का कार्य पूर्ण हो चुका है। अब सभी बस्तियों में पौष्टिक आहार से नन्हें-मुन्ने बच्चे कुपोषण से उबरे हैं।

घाटोल आदिवासी बाहुल्य

इस पंचायत समिति में 77 प्रतिशत आदिवासी हैं। अनुसूचित जातियों को शामिल किया जाए तो यह 83 प्रतिशत बैठता है। इस क्षेत्र के 222 गांवों में से 125 बाल विकास सेवाएं सुलभ कराई जा रही हैं। यहां टी.बी., कुपोषण तथा मलेरिया आदि बीमारियों का प्रकोप ज्यादा था। इस बारे में रेफरल हॉस्पीटल के प्रभारी डॉ. पी.के. जैन का कहना था कि धनी बस्तियों के संयुक्त परिवार के मवेशी भी बांध लिए जाते थे तथा कुपोषण के कारण 'इन्फेक्शन' की संभावना भी रहती है। क्षय रोग में थोड़े दिन दवाइयां लेते रहने के बाद थोड़ी राहत मिलते ही बंद कर दी जाती हैं, अब दीर्घकालीन उपचार पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है। प्रति शुक्रवार को टीकाकरण, प्रत्येक माह की तीन तारीख को स्वास्थ्य दिवस मनाया जाता है। पहले विभिन्न स्थानों पर दूषित पेयजल की शिकायतें भी थीं। अब पाइपलाइन में क्लोरीन शुद्धिकरण होता है। घाटोल में दो जून 1974 को स्थापित डिस्पेंसरी अब क्रमोन्नत होते-होते हॉस्पीटल के रूप में कार्यरत है।

बाल विकास सेवाएं

घाटोल क्षेत्र में 125 आंगनबाड़ी केन्द्र, सात सुपरवाइजर्स तथा 92 महिला मंडल कार्यरत हैं। परियोजना की दाइयों को सुनियोजित प्रशिक्षण दिया गया है। बाल विकास सेवाओं के क्षेत्रीय उप-निदेशक श्री सुमतिलाल बोहरा का मानना है कि स्वास्थ्य दिवस को चिकित्सा विभाग के ए.एन.एम. तथा एल.एस. की सक्रियता उल्लेखनीय है। इसी कारण यहां 85 प्रतिशत टीकाकरण संभव हो सका।

गनोडा के समीपवर्ती बिछाबडा केन्द्र तथा पडौली गोरधन केन्द्रों की विभिन्न महिलाओं ने सहायक परियोजना अधिकारी माया नैनावठी के निरीक्षण की सराहना की। इस क्षेत्र में पूरक पोषाहार, स्वास्थ्य जांच, प्रशिक्षण, अक्षर ज्ञान तथा पोषण एवं स्वास्थ्य सेवाओं के लिए ग्रामीण महिलाएं दिलचस्पी लेने लगी हैं।

निरन्तर स्वास्थ्य जांच का सीधा फायदा गर्भवती माताओं एवं नवजात शिशुओं को मिला है। इस क्षेत्र के चिकित्सा अधिकारियों सहित ग्रामीणों ने इस बात की पुष्टि की। गत पांच वर्षों से शिशु मृत्यु दर में तेजी से कमी आई है। इस क्षेत्र के आंगनबाड़ी केन्द्रों पर बच्चों के नियमित आगमन एवं पूरक पोषाहार की हालत यह है कि सुबह जल्दी ही केन्द्रों पर पहुंच जाते हैं तथा थोड़ा विलम्ब होते ही बच्चे अपनी बाल सुलभ जिज्ञासा से तकाजा करने लगते हैं। घाटोल के समीपवर्ती गांव में सरपंच पृथ्वी सिंह गनार्वट ने इन सेवाओं के सुचारू रूप से सम्पादित होने की पुष्टि की।

वर्तमान में घाटोल परियोजना क्षेत्र में पंद्रह सरकारी आंगनबाड़ी भवन हैं जबकि चार निर्माणाधीन हैं। वर्ष 1985 से अब तक बाल विकास परियोजना द्वारा पांच हजार से अधिक गर्भवती स्त्रियों तथा बारह हजार (तीन वर्ष तक) शिशुओं एवं इक्कीस हजार बच्चों (तीन से छः वर्ष तक) को लाभान्वित किया गया है।

लगातार टीकाकरण के लक्ष्यों में आगे बढ़ते रहने के कारण यहां के शिशुओं के स्वास्थ्य में सुधार हुआ है तथा वे अकाल मृत्यु का शिकार होने तथा पोलियोग्रस्त होने से बचे हुए हैं। दरअसल इस क्षेत्र में टीकाकरण की सफलता के पीछे ग्राम सम्पर्क दलों, चिकित्सा विभाग के समन्वय तथा ग्रामीणों का सहयोग मुख्य कारण रहे हैं।

जन सम्पर्क अधिकारी
बांस वाड़ा (राजस्थान)

ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका

आर्येन्द्र उपाध्याय

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गांवों का विकास राष्ट्रीय विकास का महत्वपूर्ण पहलू रहा है। ग्रामीण विकास अर्थात गांवों के चहुंमुखी विकास को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। किसी भी राष्ट्र के विकास की सही तसवीर उसके गांवों का विकास ही होती है। खासकर भारत जैसे देश में, जो विश्व का एक प्रमुख कृषि प्रधान देश है और जहां की 80 प्रतिशत आबादी गांवों में है, गांवों के संपूर्ण विकास के बारे में गंभीरता से सोचना और आज तक यानी पिछले चार दशकों की उपलब्धियों पर गौर करना और भी महत्वपूर्ण हो जाता है। हालांकि पिछले एक दशक के दौरान ग्रामीण आबादी का शहरों की ओर पलायन हुआ है। गांवों में पर्याप्त सुविधाओं का न होना, रोजगार की तलाश व शैक्षणिक जागृति इसके प्रमुख कारण हो सकते हैं।

अब तक बनी आठ पंचवर्षीय योजनाओं में ग्रामीण विकास को प्रमुखता दी गई है। ग्रामीण विकास का मतलब है शिक्षा, चिकित्सा, पेयजल, बिजली, लघु और कुटीर उद्योग, ग्रामोद्योग, प्रौढ़ शिक्षा, वृक्षारोपण, पर्यावरण आदि सभी क्षेत्रों में गांवों में जरूरी सुविधाएं उपलब्ध हों और गांव आत्मनिर्भर बनें। इसके लिए ग्रामीण विकास में सरकार की मदद और भूमिका जितनी जरूरी है उतनी ही स्वयंसेवी संस्थाओं की भी। स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका हालांकि एक तय सीमा तक ही होती है, लेकिन होती महत्वपूर्ण है। लोक कार्यक्रम और ग्रामीण तकनीकी विकास परिषद (कापार्ट), नेहरू युवक केन्द्र, समन्वित बाल विकास योजना, राष्ट्रीय सामाजिक सेवा (एन.एस.एस.) इसी तरह की संस्थाएं हैं।

स्वयंसेवी संस्थाओं की भूमिका

स्वयंसेवी संस्थाएं शिक्षा, चिकित्सा, कुटीर उद्योग, पेयजल, प्रौढ़ शिक्षा जैसे कार्यों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। इसके लिए इन संस्थाओं को सरकार से अनुदान मिलने की भी व्यवस्था है। इसके अलावा स्वयंसेवी संस्थाएं परियोजनाओं के माध्यम से भी अपने लक्ष्यों को पूरा करती हैं। स्वयंसेवी संस्थाएं वास्तव में सरकार और जनता के बीच की कड़ी होती हैं। ऐसी संस्थाओं का कार्य न केवल जनता और सरकार के मार्गदर्शक का होता है, वरन् उसे जनता का हितैषी भी होना चाहिए। स्वयंसेवी संस्थाओं का काम पिछड़ेपन को दूर करके लोगों में चेतना जागृत करना है। ऐसा ये संस्थाएं ग्रामीण प्रतिभाओं के इस्तेमाल से आसानी से कर सकती हैं। उत्कृष्ट ग्रामीण प्रतिभाओं के चयन के लिए स्वयंसेवी संगठनों को स्थानीय आधार पर लोगों अर्थात् कार्यकर्ताओं का चयन करना चाहिए। इससे दो फायदे होंगे। पहला, जनता और संगठन में उनकी (कार्यकर्ताओं) सीधी भागीदारी होगी और दूसरा, समाज से सीधा सरोकार होगा। अब बात आती है कि स्वयंसेवी संगठन इन प्रतिभाओं का इस्तेमाल कैसे करें? इसके लिए संगठनों (संस्थाओं) को चाहिए प्रतिभाओं को संगठन में शामिल करते समय विषय विशेषज्ञता का ध्यान रखे। संस्था में शिक्षा, कृषि, चिकित्सा जैसे बुनियादी पहलुओं को गहराई से जानने समझने वाले लोग हों। जैसे अगर गांव में किसानों को खेती के बारे में नई से नई, अद्यतन जानकारी देनी है तो इसके लिए कार्यकर्ता को कृषि क्षेत्र की पूरी समझ रखनी होगी। इसी प्रकार प्राइमरी शिक्षा से प्रौढ़ शिक्षा तक चलाने वाले कार्यक्रमों में शिक्षा से सरोकार रखने वाले लोग होने चाहिए। इसके साथ ही स्वयंसेवी संगठनों को ध्यान रखना चाहिए कि उनकी कार्य प्रणाली, विकास कार्यक्रमों का तरीका वैज्ञानिक नजरिए से परिपूर्ण हो। वैज्ञानिक नजरिए से परिपूर्ण इस मायने में कि गांवों को ज्यादा से ज्यादा आत्मनिर्भर बनाया जा सके। जब तक गांव आत्मनिर्भर नहीं होंगे, तब तक आर्थिक निर्भरता और आर्थिक सुरक्षा का पक्ष प्रबल नहीं बन पाएगा।

स्वसंसेवी संस्थाओं के संभावित कार्य क्षेत्र

ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संस्थाओं का कार्य क्षेत्र काफी विस्तृत है। जैसे गांवों में रोजगार के अवसर पैदा करने के लिए अपने स्तर पर लघु और कुटीर उद्योगों के लिए लोगों को प्रोत्साहित करना, इसके लिए उन्हें मार्गदर्शन देकर जरूरी सुविधाएं मुहैया कराना, गांव में चल रही सरकारी विकास परियोजनाओं के कार्यकलापों पर नजर रखना, आंगनवाड़ी

और प्रौढ़ शिक्षा जैसे कार्यक्रमों के सुचारु रूप से संचालन के लिए सरकार की मदद करना। इनके अतिरिक्त गांवों की समस्याओं के बारे में समय-समय पर सरकार को अवगत कराना, हर वर्ग के लोगों को जरूरत के मुताबिक पर्याप्त सुविधाएं दिलाना भी स्वयंसेवी संस्थाओं का ही काम है।

सरकारी विकास कार्यक्रमों में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों का विकास, ग्रामीण युवकों को रोजगार के लिए प्रशिक्षण (ट्राइसेम), राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, ग्रामीण जलापूर्ति कार्यक्रम प्रमुख हैं।

महिला एवं बाल विकास कार्यक्रम में भी समाज सेवी संस्थाएं अपनी भूमिका अदा कर सकती हैं। इसके लिए स्वयंसेवी संस्थाएं 15-15, 20-20 महिलाओं के समूह बनाएं और हर गांव के घर-घर में जाकर ग्रामीण महिलाओं से संपर्क करें। उन्हें शिक्षा, चिकित्सा के बारे में बुनियादी जानकारी दें। अभी यह कार्य सरकारी स्तर पर प्रायोगिक तौर पर ही हो पाए हैं। इसलिए इन्हें ठोस रूप देने में सामाजिक संस्थाओं को आगे आना चाहिए। जैसे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम को लें। बड़े पैमाने पर इस योजना को शुरू करने में कई व्यावहारिक परेशानियां सामने आईं। मसलन, कार्यक्रम से संबंधित आंकड़ों का जिलेवार और राज्यवार ब्यौरा तैयार नहीं हो पाना, परियोजना विवरण पूरा नहीं बन पाना, कार्यक्रम के तहत की जाने वाली प्राथमिकताओं का पता नहीं लग पाना, वास्तविक लाभार्थियों को उचित व पर्याप्त लाभ नहीं मिल पाना आदि। ये तथ्य 1981-82 में शुरू हुए राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम में सामने आए। ऐसे में सरकारी योजनाओं को सफल बनाने में स्वयंसेवी संस्थाएं अपना योगदान दे सकती हैं। स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्यकर्ता सही लाभार्थियों को लाभ दिलवाने, परियोजनाओं को सुचारु रूप से क्रियान्वित करवाने, कार्य की प्राथमिकताओं को तय करने में मदद दे सकते हैं।

इसी प्रकार ग्रामीण जल सप्लाई व ग्रामीण स्वच्छता योजनाओं के कार्यान्वयन, संचालन व देखरेख में सामुदायिक भागीदारी कापार्ट के जरिए वित्तीय सहायता देकर तय की जाती है। गांव में लोगों को पानी की बचत और सफाई, स्वास्थ्य शिक्षा की सही जानकारी देने के लिए सामाजिक संपर्क भी शुरू किया जाना चाहिए। स्वयंसेवी संस्थाओं को अपने स्तर पर इसके लिए शिविरों, चौपालों, गोष्ठियों का आयोजन करना चाहिए।

कापार्ट की भूमिका

लोक कार्यक्रम और ग्राम टेक्नालाजी विकास परिषद (कापार्ट) सितम्बर, 1986 में अस्तित्व में आया। कापार्ट ग्रामीण विकास में स्वयंसेवी संस्थाओं की गतिविधियों को बढ़ावा देने वाली प्रमुख केन्द्रीय एजेंसी है। कापार्ट के माध्यम से राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, महिला बाल विकास कार्यक्रम तथा पेयजल एवं स्वच्छता के टेक्नालाजी मिशन के तहत आने वाले कार्यक्रमों को सुचारु रूप से चलाने के लिए स्वयंसेवी संस्थाओं को पैसा उपलब्ध कराया जाता है। कापार्ट की महासमिति में अधिकतम एक सौ सदस्य होते हैं, जिनमें ज्यादातर स्वयंसेवी संगठनों के होते हैं।

स्वयंसेवी संस्थाओं की परेशानियां

स्वयंसेवी संस्थाओं के सामने परेशानियां आर्थिक व व्यावहारिक दोनों ही प्रकार की हो सकती हैं। सरकारी प्रक्रियाओं की वजह से संस्थाओं को लंबे समय तक अनुदान आदि के लिए इंतजार करना पड़ सकता है। इससे चल रहे कार्यों में रुकावट पैदा होती है और उन्हें सतही तौर पर ही पूरा करने की कोशिश की जाती है इससे सही व ठोस परिणाम सामने नहीं आ पाते। ऐसा भी देखने में आया है कि सरकारी मशीनरी के तहत कार्यरत शिक्षकों, आंगनबाड़ी कर्मचारियों के वेतन आदि समाज सेवी संस्थाओं के कर्मचारियों से ज्यादा होते हैं। इसलिए अक्सर ये संस्थाएं बेहतर कार्य करने में सफल नहीं हो पातीं और जनता पर से इनका विश्वास उठता जाता है। इसके लिए सरकार को चाहिए कि स्वयंसेवी संस्थाओं को पूरा प्रोत्साहन व मदद दे, ताकि ग्रामीण विकास में ये संस्थाएं अपना सकारात्मक योगदान दे सकें।

ए-22, नवभारत टाइम्स अपार्टमेंट
मयूर विहार, फेज I
दिल्ली-110092

अदम्य साहस के प्रतीक: लाला लाजपतराय

मानसिंह 'मान'

शेर-ए-पंजाब महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु 1839 में हो गई थी। उनकी मृत्यु के छः साल बाद अंग्रेज और सिक्ख फौजों में निर्णायक जंग हुई। मजबूत बाहूबल और हिम्मत वाली सिक्ख फौज केवल इसी कारण हार गई कि उनका नेतृत्व करने वाला कोई भी योद्धा शेर-ए-पंजाब की जगह मौजूद नहीं था। आखिरकार हिन्दुस्तान का वह हिस्सा जिसे पंजाब कहा जाता था, अंग्रेजों का गुलाम हो गया। गुलामी के इस दौर में भी पंजाबियों में स्वाभिमान की भावना ज्यों की त्यों बनी रही और ये लोग उस अवसर की प्रतिक्षा करने लगे कि पंजाब की ये धरती फिर से किसी ऐसे सपूत को जन्म देगी जो शेर-ए-पंजाब की भूमिका निभा पाएगा।

अंग्रेजी शासन के 20 साल के बाद 28 जनवरी 1865 में साधारण-से गांव 'ढुण्ढीके' तहसील मोगा, जिला फिरोजपुर (पंजाब) के अग्रवाल खानदान के मुन्शी राधाकृष्ण के घर एक सपूत ने जन्म लिया। उनकी माता का नाम गुलाब देवी था। उस बालक का नाम 'लाजपत' रखा गया।

लाजपत राय ने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा सरकारी मिडिल स्कूल रोपड़ से प्राप्त की। 13 वर्ष की उम्र में उनकी शादी हो गई। उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पंजाब और कलकत्ता विश्वविद्यालयों से एक ही वर्ष में उत्तीर्ण की। 1880 में कलकत्ता और पंजाब विश्वविद्यालय से दोहरी मैट्रिक परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास करने के बाद उनकी आगे की पढ़ाई एक समस्या बन गई। उनके पिता को अपने होनहार बालक को पुस्तकों से अलग कर देना उचित नहीं लग रहा था। पैसे के बिना आगे पढ़ाई करना बड़ा ही मुश्किल था। सभी परिस्थितियों को देखते हुए उनके पिता ने यह निर्णय ले लिया कि परिवार को चाहे कितनी ही मुसीबतें उठानी पड़े, मगर लाजपतराय को उच्च शिक्षा के लिए कालिज में जरूर भेजेंगे। 1881 में गवर्नमेण्ट कालिज लाहौर जो उस समय सारे पंजाब के लिए एक ही था, प्रवेश ले लिया। कालिज के छात्र जीवन में आठ या दस रुपये प्रति माह घर से खर्च के लिए आते थे, बाकी वजीफे की राशि से पूरी सादगी से गुजारा चल रहा था। गरीबी का अहसास बराबर बना रहता था। कानून की परीक्षा के लिए सख्त मेहनत करके 'मुख्तार' बनने की योग्यता प्राप्त कर ली। इसके बाद दो वर्ष तक कालिज में रहे। यहां इनके सहपाठियों में महात्मा हंसराज, पंडित गुरुदत्त विद्यार्थी, राजा नरेन्द्र नाथ और प्रोफेसर रुचिकर साहनी बहुत प्रसिद्ध हुए। पंजाब की शिक्षा के इतिहास में किसी एक वर्ष में इतने योग्य छात्र शायद ही हुए हों। इन पांच युवकों ने पंजाब को आधुनिक रूप देने में जितना योगदान दिया शायद ही कहीं हो। यह मित्र मण्डली वाले, कालिज जीवन के बाद भी एक-दूसरे को प्रभावित करते रहे।

परिस्थितियां उन्हें धरती पर रखना चाहती थीं और उनकी आत्मा ऊंचे आकाश में उड़ रही थी। अब उन्होंने जगराऊं की अदालत में 'मुख्तार' का काम शुरू कर दिया। इस छोटे-से कस्बे की जटिल समस्याओं के बारे में सोचने वाला कोई न था। इसलिए वहां उन्हें घुटन-सी महसूस हुई। 'मुख्तार' का काम भी उन्हें अपमानजनक लगा। इन परिस्थितियों में वह 'जगराऊं' छोड़कर 'रोहतक' आ गए। उन दिनों उनके पिता भी वहीं अध्यापक थे और रोहतक जिला मुख्यालय भी था। इसलिए जीहजूरी की सम्भावना न के बराबर थी। अब उन्होंने अपने पिता की प्रेरणा पर वकालत पास करने की कोशिश की, परन्तु सफल नहीं हुए। इसके बाद वे लाहौर यात्रा पर गए और निश्चय किया कि वह मुख्तार के काम पर नहीं आएंगे। लाहौर में अपने मित्र गुरुदत्त से सलाह की और वकालत की परीक्षा में सफल हुए। इस बार लाजपतराय सफल छात्रों में दूसरे स्थान पर थे। सफल होकर आप रोहतक वापस आ गए। यहां आकर वे स्थानीय आर्य समाज की गतिविधियों में व्यापक रूप में भाग लेने लगे। कभी-कभी वे समाचार पत्रों के लिए भी लिखते थे। वे चाहते थे कि उनके विचार किसी तरह भारत के ग्रामीण लोगों तक पहुंचे, ताकि जिस भारतीय समाज का स्वप्न वे देखते थे वह साकार हो सके।

उनमें देश भक्ति का आवेश था। देशवासियों की सेवा करने की भावना पूरे यौवन में थी, परन्तु देश की राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने की योग्य क्षमता अभी उनमें नहीं आई थी। अकारण अशान्ति फैलाने में वे विश्वास नहीं करते थे। वे सरकार का विरोध केवल विरोध के लिए नहीं करना चाहते थे। इस समय उनकी राजनैतिक विचारधारा पनप ही रही थी। उन्होंने एक उर्दू पत्रिका निकालने का निर्णय भी लिया, जिसका नाम 'भारत देश सुधारक' था।

इसके साथ ही वकालत के पेशे में भी प्रगति हो रही थी और इस पेशे से असन्तुष्ट होने का कोई कारण दिखाई नहीं देता था, लेकिन उनकी अपनी नजर में रोहतक के दिन विकासकाल के ही थे। 1885 में उन्होंने वकालत पास की थी। उन्होंने 1886 में पड़ोस के जिला हिसार में एक महत्वपूर्ण मुकदमा अपने हाथ में लिया। वह स्थान उन्हें अच्छा लगा और वहीं रुक गए। यहां उनके पांव जमने लगे और वे वहां छः वर्ष तक रहे। इस अवधि के दौरान उनके सामाजिक कार्य को बहुत बल मिला और इसी समय में उनका राजनीति में सूत्रपात हुआ। राजनीति में कदम रखने से बड़े-बड़े नेताओं से सम्बंध हो गया था। हिसार में चन्दू लाल उनके परम मित्र बने, जिन्होंने लाजपतराय को कठिन परिस्थितयों में सहयोग दिया। उनकी प्रशंसा किसानों में होने लगी। लाजपतराय अब केवल वकील ही नहीं बल्कि एक प्रमुख व्यक्ति बन चुके थे। वे वहां की नगरपालिका के अवैतनिक सचिव के रूप में सेवा भी करते रहे।

25 वर्ष की कम आयु में ही लाजपतराय में राजनैतिक सूझ-बूझ थी। लाजपतराय के विचार 'खुले पत्र' के रूप में अखबारों में छपते रहते थे। उन खुले पत्रों से काफी हलचल मच गई थी। इन पत्रों की एक पुस्तिका बन गई और यह पुस्तक कांग्रेस अधिवेशन की पूर्व संध्या को जारी की गई। पुस्तक ने लाजपतराय के राजनैतिक विचारों को देश भर में प्रसिद्ध कर दिया। इसके तुरन्त बाद लाजपतराय इलाहाबाद पहुंचे। रेलवे स्टेशन पर मदनमोहन मालवीय तथा अयोध्या नाथ ने उत्साहपूर्वक उनका स्वागत किया। लाजपतराय भारत की राष्ट्रीय राजनीति में प्रसिद्ध हो गए। 1888 में कांग्रेस के अधिकारिक इतिहासकार डॉ. पट्टभि सीतारमैया ने अधिवेशन पर टिप्पणी करते हुए लिखा है :

"लाजपतराय निस्संदेह सही दृष्टि वाले व्यक्ति थे। वह 1888 के कांग्रेस अधिवेशन में उर्दू में बोले और उन्होंने प्रस्ताव किया कि आधा दिन शैक्षिक तथा औद्योगिक मामलों के लिए रखा जाए। यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया और तब से लगाई जाने वाली औद्योगिक प्रदर्शनियां उस प्रस्ताव के आधार पर नियुक्त की गई समिति की सिफारिशों का सीधा परिणाम है।"

उनके जीवन में ऐसे दौर भी आए जब वे कांग्रेस तथा उसकी नीतियों के प्रति असंतुष्ट रहे। 1893 तक वे कांग्रेस के अधिवेशनों में शामिल नहीं हुए।

1893 में लाजपतराय लाहौर आ गए तथा वहां पर वकालत शुरू कर दी। उस समय लाहौर राजनैतिक तथा सामाजिक गतिविधियों का केन्द्र था। जिसके कारण लाजपतराय को राजनैतिक कार्यक्षेत्र में काम करने का सुअवसर प्राप्त हो गया। उन्हें जोखिम उठाने की अनुकूल परिस्थितियां मिल गईं जिसको पाने के लिए उनकी आत्मा भटक रही थी। ऐसा जोखिम जो रोजी-रोटी से बहुत बड़ा था।

1893 में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ। लाजपतराय भी स्वागत समिति के सदस्य थे। लाजपतराय ने इस अधिवेशन में दो-तीन भाषण दिए। वे लाहौर में रह कर पंजाब के लोगों को स्वाधीनता के विचारों से परिपक्व करते रहे। इन दिनों में पहली बार उन्होंने पूना के नेताओं, श्री गो. कृ. गोखले और बाल गंगाधर तिलक से सम्पर्क स्थापित किया। तदुपरान्त यह मुलाकात जीवन में बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई। लाजपतराय का मन जितना कोमल था, उतना ही कठोर भी था। वह कठिन-से-कठिन कष्टों को आसानी से झेल सकते थे। गरीबों और दलितों के कष्टों के प्रति संवेदनशील रहते थे। वे सारी उम्र संघर्ष करते रहे। इसलिए उनके जीवन पर संघर्ष का भाग हावी रहा। इस तरह संवेदनशील स्वभाव उनकी महानता को उजागर करता था।

वे चीफ कोर्ट में एक सफल वकील सिद्ध हो रहे थे और प्रत्यक्ष तौर पर वे चोटी के वकील बनते दिखाई दे रहे थे। परन्तु लाजपतराय का अपना मन कहीं और था इस सम्बंध में उन्होंने लिखा है :

"मेरी वकालत मेरी सार्वजनिक गतिविधियों में बाधक थी, और मेरी सार्वजनिक गतिविधियां मेरी वकालत में अड़चन डाल रही थी।"

1898 में जब लाहौर में आर्य समाज की शताब्दी मनाई गई, तो उन्होंने अपने वकालत के कार्य को सीमित कर दिया और अपना अधिकतर वक्त समाज की सेवा में लगाने लगे। दो वर्ष बाद उन्होंने अपने मित्र हंसराज को लिखे पत्र में घोषणा की कि वह वकालत की सारी कमाई समाज एवं देश के कार्य में लगाएंगे। यह निर्णय इस उद्देश्य पर आधारित था कि पैसे की लालसा को समाप्त किया जाए। इस प्रकार अधिक से अधिक लोग आकर्षित होने लगे। उनके जोरदार भाषण, कंजूस से कंजूस व्यक्ति को गांठ ढीली करने के लिए मजबूर कर देते थे। और यह एकत्र की गई धनराशि सार्वजनिक कार्य में प्रयोग होने लगी। इसके साथ ही उनको सारे देश के मुकाबले पंजाब और क्षेत्रीय मसले छोटे लगने लगे।

1905 में गोखले के साथ इंग्लैण्ड जाने का अवसर मिला और जब लाहौर वापस लौटे तो घोषणा की कि उनके पास 3 हजार रुपये की राशि बच गई है। उसे किसी और सार्वजनिक कार्य में लगाया जाए। उन्होंने 1907 में आन्दोलन की जो लहर फैलाई वह देशव्यापी बन गई। इसे किसान-आन्दोलन का नाम दिया गया जो दिन-प्रतिदिन गम्भीर तथा उग्र होता जा रहा था।

1907 में एक संगठन बनाया गया जिसका नाम 'भारत माता' रखा था। सूफी अम्बा प्रसाद भी इसमें शामिल थे। इस संगठन के युवक सरे-आम ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध बिना किसी भय के धड़ल्ले से भाषण दिया करते थे। हालांकि लाला लाजपतराय का इनसे सीधा सम्बंध नहीं था, लेकिन वे नौजवान लाजपतराय से हर सम्भव सहायता की आशा जरूर करते थे। अजीत सिंह जो किसान थे, वे किसानों के पक्ष में भाषण देते थे। वे इस राज के विरुद्ध आन्दोलन द्वारा लोगों की भावनाओं को उजागर करने लगे। इसी वर्ष मार्च के महीने में किसानों के संगठन ने लाजपतराय को लायलपुर आमंत्रित किया और उन्हें जनसमूह को सम्बोधित करने के लिए कहा गया। लाजपतराय की उपस्थिति से जनसमूह में जोश की जबरदस्त लहर दौड़ गई। भीड़ ने डिप्टी कमीश्नर के दफ्तर पर हल्ला बोल दिया। इस दौरान लाला लाजपतराय को गिरफ्तार करने के लिए सरकारी अधिकारियों ने षडयंत्र रचा। अपनी गिरफ्तारी की सम्भावना को देखते हुए लाजपतराय ने अपने पिता को पत्र लिखा कि वह धैर्य रखें जो कोई भी आग से खेलता है कभी न कभी उसका चेहरा झुलसता है। सत्ताधारी अधिकारियों की आलोचना करना भी आग से खेलना है। मुझ पर जो भी बीते भगवान उसको सहन करने की शक्ति देंगे।

उसी दिन कुछ पुलिस अधिकारी आए और लाला लाजपतराय को बताया कि उनके विरुद्ध देशद्रोह का मुकद्मा चलाया जाएगा। उनको गिरफ्तार करके बर्मा की माण्डले जेल में भेज दिया। माण्डले जेल में एक वर्ष बिताने के बाद उन्हें यह चेतावनी देकर छोड़ दिया गया कि आगे वे ऐसे आन्दोलन न करें। लेकिन वे आराम से नहीं बैठ पाए। जेल से वापस आने के पश्चात् वे 18 वर्ष तक देश और देश के बाहर भिन्न-भिन्न साधनों से देश को आजाद कराने के लिए मानसिक बल तथा सहानुभूति की शक्ति प्राप्त करते रहे। अगले ही वर्ष इंग्लैण्ड जाकर भारतीय विद्यार्थियों के सन्मुख देश में हो रही आजादी की लड़ाई के बारे में जानकारी देकर उन्हें देश के हित के बारे में जागृत किया। इसी तरह चार-पांच साल बाद जापान गए और फिर अमेरिका में जाकर 'गदर' पार्टी के नेताओं से मिलकर 'इंडियन होम रूल लीग' की स्थापना की तथा स्वयं उसके अध्यक्ष बने और इस विचारधारा को बाकायदा चलते रहने के लिए 'यंग इंडियन' नाम का एक अखबार निकाला। इस तरह जो काम केवल भारत के अन्दर हो रहा था उसे विश्वव्यापी रूप दे दिया। ये सब लाजपतराय की लगन और सूझ-बूझ का प्रमाण था।

इसी प्रकार कार्यरत रहते हुए 1925 में जिनेवा के इण्टरनेशनल लेबर कांफरेन्स में उन्होंने भारतयी मजदूरों का प्रतिनिधित्व किया। बेगार की प्रथा को खत्म करने का प्रस्ताव आपने ही पास कराया था।

उधर अंग्रेज सरकार ने 1928 में सात मेम्बरों का 'साईमन कमीशन' भारत भेजा। सारे देश के राजनैतिक दलों ने उन्हें काले झण्डे दिखाकर उनके वापस जाने की मांग की। 'नौजवान भारत सभा' के इंकलाबियों ने 30 अक्तूबर 1928 को इस आयोग के सामने व्यापक प्रदर्शन किया। उस दिन इतने लोग जमा हुए कि भीड़ पुलिस के काबू से बाहर हो गई। अंग्रेज पुलिस आफिसर साण्डर्स लाठी चार्ज करते हुए बड़ी बेरहमी से भीड़ पर टूट पड़ा। इतने में उसकी नजर भीड़ का नेतृत्व करने वाले शेर-ए-पंजाब लाला लाजपतराय पर पड़ी। उन पर अंधाधुंध लाठियां बरसानी शुरू कर दीं। एक छाती पर, एक कंधे पर, एक सर पर, इसी तरह लाठी पर लाठी बरसती रही और शेरे-ए-पंजाब नारे लगाते रहे—"साइमन वापस जाओ, साइमन वापस जाओ।"

इसी सिलसिले में लाहौर के मौरी दरवाजे पर पुलिस के जालिमाना रवैये के खिलाफ नाराजगी जाहिर करने के लिए एक जलसा हुआ। लाला लाजपतराय ने जलसे में हाजिर लोगों को बताया कि इस तरह के जालिमाना बर्ताव करने वाली सरकार तहजीब याफ्ता नहीं कही जा सकती। ऐसी सरकार अधिक समय तक कायम नहीं रह सकती। आपने बड़े स्पष्ट शब्दों में भविष्यवाणी की कि इन निहत्थों पर सरकार ने जो वार किया, वह सरकार को ले डूबेगी। साथ ही यह घोषणा भी की कि मुझ पर जो लाठियां बरसाई गई हैं, वे अंग्रेजी सरकार के ताबूत में कील साबित होंगी।

लाठी चार्ज के 18 दिन बाद 1928 की 17 नवम्बर को सवेरे सात बजे भारत माता की गोद में यह सपूत हमेशा के लिए सो गया। इनकी मौत के पूरे एक माह के बाद 17 दिसम्बर 1928 को इंकलाबी नौजवान भगत सिंह तथा उसके साथी ने साण्डर्स को मार दिया। शेरे पंजाब लाला लाजपतराय ने उस शेरे पंजाब महाराजा रणजीत सिंह के पंजाब को अंग्रेजों से आजाद कराने का जोरदार संघर्ष छेड़ा। जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों को केवल पंजाब ही नहीं बल्कि सारे भारतवर्ष को छोड़कर जाने के लिए मजबूर होना पड़ा। इसलिए आज इस संदर्भ में उन्हें शेरे-ए-पंजाब कह कर उनके बलिदान को पंजाब तक सीमित करने की बजाय उन्हें 'शेर-ए-हिन्द' कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। वे केवल पंजाब के लिए ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारत के लिए बलिदान हुए। उनकी देश सेवा, मानव सेवा, साहित्य सेवा एवं लोकप्रियता और भारतीय जनता की उनके प्रति श्रद्धा को सन्मुख रखकर, स्वतंत्र भारत की सरकार को चाहिए कि उन्हें मरणोपरान्त सर्वश्रेष्ठ उपाधि से अलंकृत करें, ताकि उनकी देश-प्रेम व बलिदान की गाथा आने वाली पीढ़ियों के लिए चिरस्मरणीय हो सके। □

असम की प्रगति में नियोजित विकास का योगदान

सी. वी. रमन

सात बहनों के नाम से विख्यात भारत के इस महत्वपूर्ण सीमान्त क्षेत्र के सात पूर्वोत्तर राज्यों में असम, जो पूर्वोत्तर भारत का प्रवेश द्वार भी कहलाता है, सबसे पुरातन है। यह अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, मणिपुर, नगालैंड, मिजोरम और त्रिपुरा के लिए एक गलियारा भी है। तेल जैसे प्राकृतिक संसाधनों में अति समृद्ध; असम का मौसम विविधतापूर्ण है और अपनी प्रसिद्ध नकदी फसल, चाय के लिए यह सारी दुनिया में विख्यात है।

पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान असम में बहुत विकास हुआ है। अनुमान है कि सातवीं योजना के अंत तक उसके 22,000 गांवों में लगभग 80 प्रतिशत का विद्युतीकरण हो चुका है, लगभग दो-तिहाई को सड़कों से जोड़ा जा चुका है और प्रति गांव विद्यालयों का औसत 1.5 जबकि 1986-87 में यहां 34,750 विद्यालय थे।

परिव्यय में वृद्धि

असम के लिए पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत प्रथम पंचवर्षीय योजना का 28 करोड़ रुपये वास्तविक व्यय छठी योजना में बढ़कर 1280 करोड़ रुपये हो गया। सातवीं योजना का अनुमोदित व्यय 2100 करोड़ रुपये है। असम को केन्द्रीय सहायता हेतु विशेष श्रेणी के राज्य का दर्जा प्राप्त है। जिलों के लिए केन्द्रीय सहायता 30 प्रतिशत अनुदान और 70 प्रतिशत ऋण के रूप में दी जाती है। केन्द्रीय सहायता प्रथम योजना में 22 करोड़ रुपये से बढ़कर सातवीं योजना में 2065 करोड़ रुपये हो गई है।

इसके अतिरिक्त सातवीं योजना के लिए विशेष केन्द्रीय सहायता भी दी गई है। पहाड़ी क्षेत्रों के लिए 144 करोड़ रुपये की राशि दी गई है और जनजातीय उप-योजना तथा अनुसूचित जाति हेतु विशेष संघटक योजना के लिए 46 करोड़ रुपये दिए गए हैं। विशेष केन्द्रीय सहायता पहाड़ी क्षेत्रों और अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के विकास के लिए राज्य द्वारा किए जा रहे प्रयासों के पूरक के रूप में दी जा रही है।

एक विचित्र समस्या

असम की लगभग 90 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है। इसीलिए कृषि और सहायक क्षेत्रों की उत्पादकता बढ़ाने को राज्य की अर्थव्यवस्था के विकास में प्राथमिकता दी जानी चाहिए। असम कृषि के क्षेत्र में एक विचित्र समस्या से ग्रस्त है जिसके कारण करीब आधे वर्ष, दिसम्बर से जून तक लाखों हेक्टेयर भूमि का उपयोग नहीं हो पाता। पारंपरिक खरीफ किस्म की दीर्घकालीन धान की फसल जो कि यहां की प्रमुख फसल है, जुलाई-दिसम्बर की अवधि में लगाई जाती है। इसकी अवधि 140 से 160 दिन की है। चूंकि रबी बोने का अनुकूलतम मौसम नवम्बर के मध्य तक समाप्त हो जाता है, इसलिए खरीफ रबी के मौसम को आच्छादित कर लेता है। इसलिए रबी फसलें उगाई नहीं जा सकतीं और असम को एक वर्ष में धान की एक ही फसल की अल्प उपज पर निर्भर रहना पड़ता है। परिणाम यह है कि राज्य को 10 लाख टन से अधिक का अनाज आयात करने को बाध्य होना पड़ता है। बाढ़ मुक्त क्षेत्रों में धान की कम अवधि की किस्मों को उगाकर इस समस्या पर काबू पाया जा सकता है ताकि अक्तूबर के मध्य तक खरीफ फसल की कटाई की जा सके। इसके बाद रबी की फसल उगाई जा सकती है।

पहाड़ी क्षेत्रों में झूम खेती को कम करने और बाद में इसके बदलने पर विशेष जोर दिया गया है। झूम खेती में पहाड़ी ढलानों के वनों को काट दिया जाता है और लकड़ियां सूखने पर उन्हें जला दिया जाता है, ठंडी राख में घरेलू खपत के लिए खाद्यान्न और सब्जियां उगाई जाती हैं। झूम खेती से न केवल फसल कम पैदा होती है बल्कि इससे पारिस्थितिकी को भी नुकसान पहुंचता है जिसके कारण भू-कटाव जैसी गंभीर समस्या पैदा हो जाती है।

विकेन्द्रीकरण

असम में योजना प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण विकास का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू है। असम पंचायती राज अधिनियम, 1972 के तहत एक दो स्तरीय पंचायती राज प्रणाली लागू की गई। 1986 के अधिनियम के अंतर्गत एक तीन स्तरीय पंचायती राज प्रणाली शुरू की गई है। इसमें माखुमा परिषद्, आंचलिक पंचायत और गांव पंचायत शामिल होंगी। संगठनात्मक ढांचे में मैदानी जिलों में उप-मंडलीय योजना और विकास परिषदें और जिला स्तर पर विशेष कार्य दल होंगे।

विशेष कार्य दल योजनाएं तैयार करेंगे और उन्हें उप-मंडलीय योजना और विकास परिषद् के सामने रखेंगे। ये योजनाएं बाद में संबंधित विभागों को भेजी जाएंगी। इस योजना प्रक्रिया में इस समय विभिन्न क्षेत्रों में 23 योजनाएं शामिल हैं। पिछले तीन वर्षों के दौरान इसके लिए प्रति वर्ष 70 करोड़ रुपये की धनराशि आवंटित की गई है। □

लोक प्रशासन और प्रबंध विज्ञान साथ ही आर्थिक विकास, आर्थिक प्रशासन और विकास प्रशासन आदि विषयों पर हिन्दी पुस्तकों (मूल अथवा अनूदित) के लिए सरदार वल्लभ भाई पटेल पुरस्कार योजना

वर्ष 1989 तथा वर्ष 1990 के लिए पुरस्कार

भारत सरकार ने लोक प्रशासन और प्रबंध विज्ञान तथा साथ ही आर्थिक विकास, आर्थिक प्रशासन और विकास प्रशासन आदि विषयों पर हिन्दी में प्रामाणिक साहित्य के प्रकाशन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से उपर्युक्त विषयों पर हिन्दी की प्रामाणिक पुस्तकों (मूल अथवा अनूदित) के लिए 'सरदार वल्लभ भाई पटेल पुरस्कार योजना' नामक एक पुरस्कार योजना आरंभ की है।

पुरस्कार — उपर्युक्त विषयों पर मौलिक हिन्दी पुस्तको के लिए 10,000 रु०, 7,000 रु० और 5,000 रुपए के तीन पुरस्कार दिए जाएंगे। इसके अलावा उपर्युक्त विषयों पर हिन्दी से इतर भाषाओं में लिखी गई प्रामाणिक मूल पुस्तकों के हिंदी अनुवादों को भी तीन-तीन हजार रुपए के दो पुरस्कार दिए जाएंगे। ये पुरस्कार प्रत्येक वर्ष दिए जाते हैं। किसी अन्य योजना के अन्तर्गत पुरस्कृत किसी पुस्तक पर विचार नहीं किया जाएगा।

पुरस्कारों का निर्णय इस प्रयोजन के लिए गठित एक मूल्यांकन समिति द्वारा किया जाएगा। इस समिति का निर्णय अन्तिम और निर्विवाद होगा। यदि मूल्यांकन समिति द्वारा किसी भी प्रविष्टि को पुरस्कार के योग्य नहीं पाया गया तो सभी अथवा कोई भी पुरस्कार नहीं दिया जाएगा।

पात्रता — इस योजना में कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मन्त्रालय में कार्य कर रहे व्यक्तियों को छोड़कर सभी व्यक्ति भाग ले सकते हैं। पुरस्कारों पर विचार करने के लिए वर्ष 1989 तथा वर्ष 1990 के लिए प्रविष्टियाँ आमन्त्रित की जाती हैं। 1 जनवरी, 1989 से 31 दिसम्बर, 1989 के दौरान लिखी गई/प्रकाशित पुस्तकों पर 1989 के पुरस्कारा के लिए विचार किया जाएगा तथा 1 जनवरी, 1990 से 31 दिसम्बर, 1990 के दौरान लिखी गई प्रकाशित पुस्तकों पर 1990 के पुरस्कार के लिए विचार किया जाएगा। पाण्डुलिपियाँ/अप्रकाशित पुस्तकों पर भी विचार किया जाएगा। तथापि, पुरस्कारों का भुगतान उनके प्रकाशन के बाद ही किया जाएगा।

प्रविष्टि की अन्तिम तारीख — **प्रविष्टियाँ प्राप्त होने की अन्तिम तारीख 30 अप्रैल, 1991 है।** उस तारीख के बाद प्राप्त होने वाली पुस्तकों/पाण्डुलिपियों पर विचार नहीं किया जाएगा। प्रविष्टि फार्म और अन्य ब्यौरे **श्री वेद प्रकाश चोपड़ा, उप निदेशक (राजभाषा), प्रशासनिक सुधार और लोक शिकायत विभाग, कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मंत्रालय, पंचम तल, सरदार पटेल भवन, संसद मार्ग, नई दिल्ली-110001** से प्राप्त किए जा सकते हैं।

davp 90/886

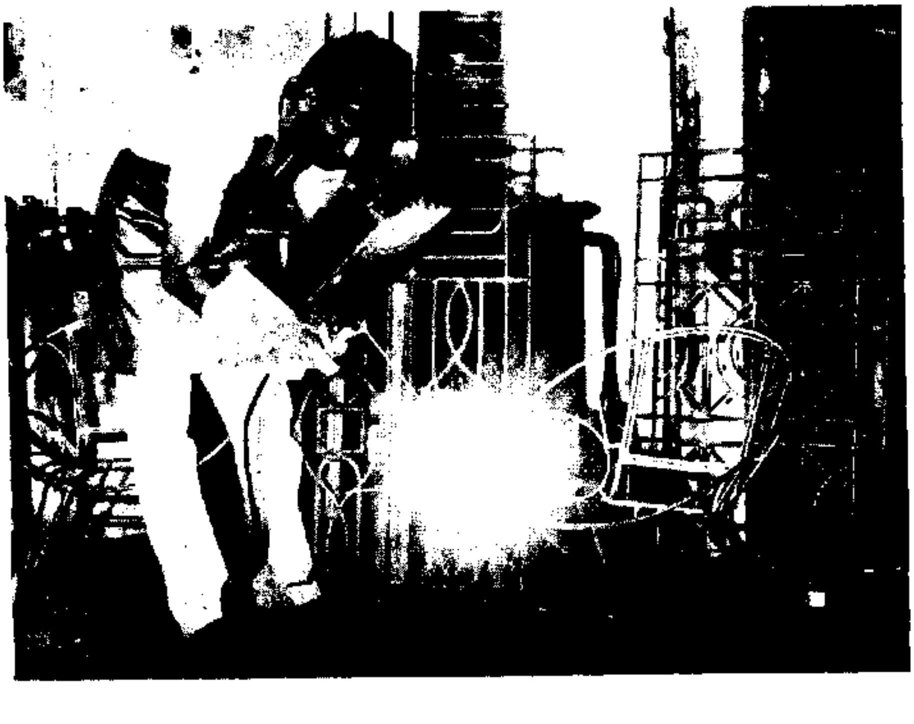

डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

RN/708/57
P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और
तारा आर्ट प्रेस, बी-4, हंस भवन, बहादुर शाह ज़फर मार्ग, नई दिल्ली-110002 द्वारा मुद्रित